अप्रैल 2000 मूल्य : 15 रुपये

कुरुक्षेत्र

विशेषांक

ग्रामीण विकास को समर्पित

वर्ष 2000–2001 का बजट

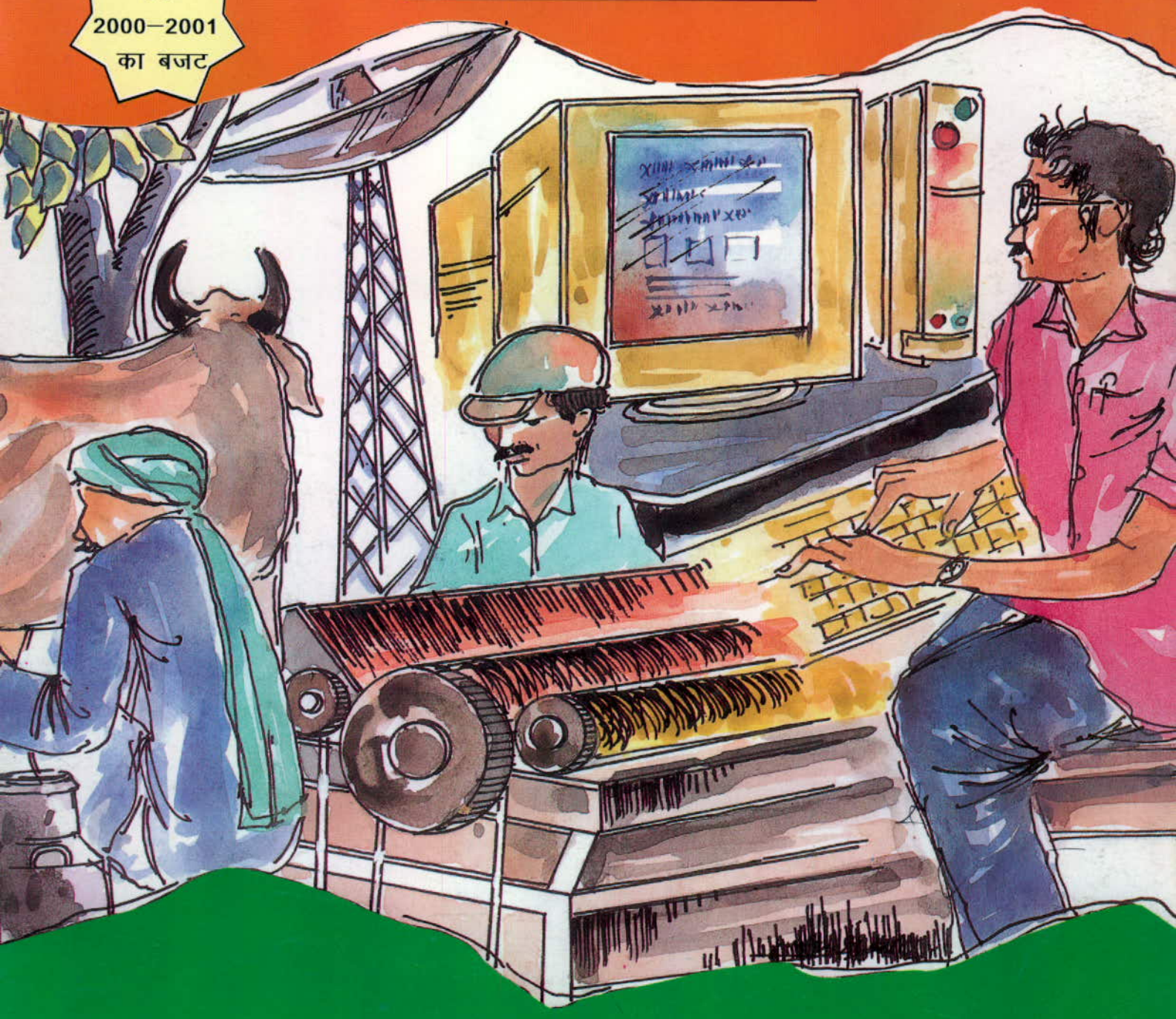

ग्रामीण बेरोजगारी : नई सदी की बड़ी चुनौती

अन्नपूर्णा योजना का शुभारम्भ

केन्द्र सरकार ने वृद्धजनों के लाभ के लिए अन्नपूर्णा योजना शुरू करने का फैसला किया है। यह पूरी तरह केन्द्र सरकार द्वारा प्रायोजित योजना होगी। इसके तहत उन वृद्धजनों को खाद्यान्न दिया जाएगा जिनकी अपनी कोई आय नहीं है और उनकी देखभाल करने वाला भी कोई नहीं है।

इस योजना के अनुसार :

- 65 वर्ष से अधिक उम्र के उन सभी वृद्धजनों को 10 किलो अनाज निशुल्क दिया जाएगा जो वृद्धावस्था पेंशन के हकदार हैं लेकिन उन्हें यह पेंशन नहीं मिल रही है।
- फिलहाल किसी भी राज्य में इस योजना के लाभार्थियों की संख्या वृद्धावस्था पेंशन योजना के लाभार्थियों की संख्या के 20 प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन के तहत 68.81 लाख लोग इसके लाभ के हकदार हैं। इस अनुपात में उसके 20 प्रतिशत यानी 13.762 लाख लोग अन्नपूर्णा योजना के पात्र होंगे।
- ग्रामीण विकास मंत्रालय में ग्रामीण विकास विभाग इस योजना को लागू करने और उसकी निगरानी करने के लिए जिम्मेदार होगा और वही राज्यवार केन्द्रीय सहायता तय करेगा।
- राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन की तरह अन्नपूर्णा योजना के लाभार्थियों की पहचान भी ग्राम पंचायतों द्वारा की जाएगी। ग्राम पंचायत से पात्रता का कार्ड मिलने पर ही लाभार्थी उचित दर की दुकान से हर महीने 10 किलो चावल/गेहूं निशुल्क प्राप्त कर सकेगा।
- भारतीय खाद्य निगम और उचित दर की दुकानों की पूरी व्यवस्था पर नागरिक आपूर्ति और सार्वजनिक वितरण मंत्रालय के सार्वजनिक वितरण विभाग का प्रशासनिक नियंत्रण है इसलिए यह विभाग ही जिला स्तर पर खाद्यान्नों की उपलब्धता और उनके वितरण को सुनिश्चित करने का जिम्मेदार होगा। भारतीय खाद्य निगम इस योजना के खाद्यान्न का अलग से हिसाब–किताब रखेगा और हर महीने योजना के तहत जारी किए गए खाद्यान्न की वास्तविक मात्रा की सूचना ग्रामीण विकास विभाग को देगा।
- वित्त वर्ष 2000–2001 के बजट में इस योजना के लिए फिलहाल 100 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। बाद में आवश्यकता होने पर इसमें बढ़ोतरी की जा सकती है।

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास मंत्रालय
की
प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 45 अंक 6

चैत्र–बैसाख 1922

अप्रैल 2000

संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
जयसिंह
बी.एस. मिरगे

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र',
ग्रामीण विकास मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली–110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011–3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
के.एस. जगन्नाथ राव

आवरण सज्जा और रेखांकन
संजीव शेषावती

फोटो साभार :
मीडिया डिवीजन, ग्रामीण विकास मंत्रालय

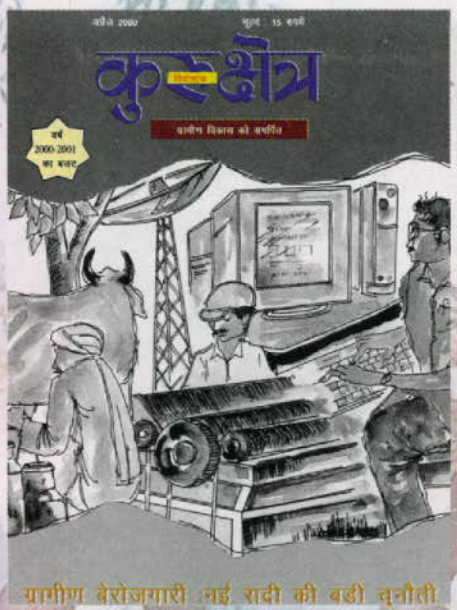

ग्रामीण बेरोजगारी : नई सदी की बड़ी चुनौती

मूल्य एक प्रति : सात रुपये
यह अंक : 15 रुपये
वार्षिक शुल्क : 70 रुपये
द्विवार्षिक : 135 रुपये
त्रिवार्षिक : 190 रुपये

विदेशों में (हवाई डाक द्वारा)
पड़ोसी देशों में : 500 रुपये (वार्षिक)
अन्य देशों में : 700 रुपये (वार्षिक)

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत के बारे में विज्ञापन और प्रसार प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से पत्र–व्यवहार करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक–4, लेवल–7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली–110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

- गांवों में बेरोजगारी की समस्या — कृपा शंकर — 3
- ग्रामीण बेरोजगारी – एक गम्भीर चुनौती — डा. उमेश चन्द्र अग्रवाल — 7
- ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाऊ रोजगार की चुनौतियां — जितेन्द्र गुप्त — 16
- बजट सख्त, पर ग्रामीण कार्यक्रमों की बहार — वेद प्रकाश अरोड़ा — 19
- बजट में ग्रामीण विकास को प्राथमिकता — देवकृष्ण व्यास — 24
- रोजगार योजनाओं की सफलता में अमल और निगरानी तंत्र की भूमिका निर्णायक — डा. कैलाश चन्द्र पपनै — 26
- ग्रामीण बेरोजगारी : समस्या और समाधान — प्रकाश दुबे — 30
- ग्रामीण बेरोजगारी : समाधान क्या है — प्रदीप पंत — 32
- ग्रामीण रोजगार की नई चुनौती — जगमोहन माथुर — 37
- ग्रामीण रोजगार : प्रश्न है दृष्टि और प्रतिबद्धता का — श्रीवल्लभ शरण — 41
- ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या और उससे निपटने के उपाय — डा. गौरीशंकर राजहंस — 48
- रोजगार सृजन के कार्यक्रम ग्रामीण पूंजी निर्माण करने वाले हों — उपेन्द्र प्रसाद — 52
- ताकि गांव शहर बन सकें — राजकिशोर — 55
- पिछड़े इलाकों पर ज्यादा जोर देने की जरूरत — मंजू पंवार — 58
- भारत को विकसित देश बनाने के लिए बेरोजगारी दूर करना जरूरी — रामजी प्रसाद सिंह — 61
- बेरोजगारी की समस्या : समाधान की चुनौती — प्रो. रामेश्वर मिश्र पंकज — 66

हरियाली और रास्ता सुनो बूँद की दास्ता

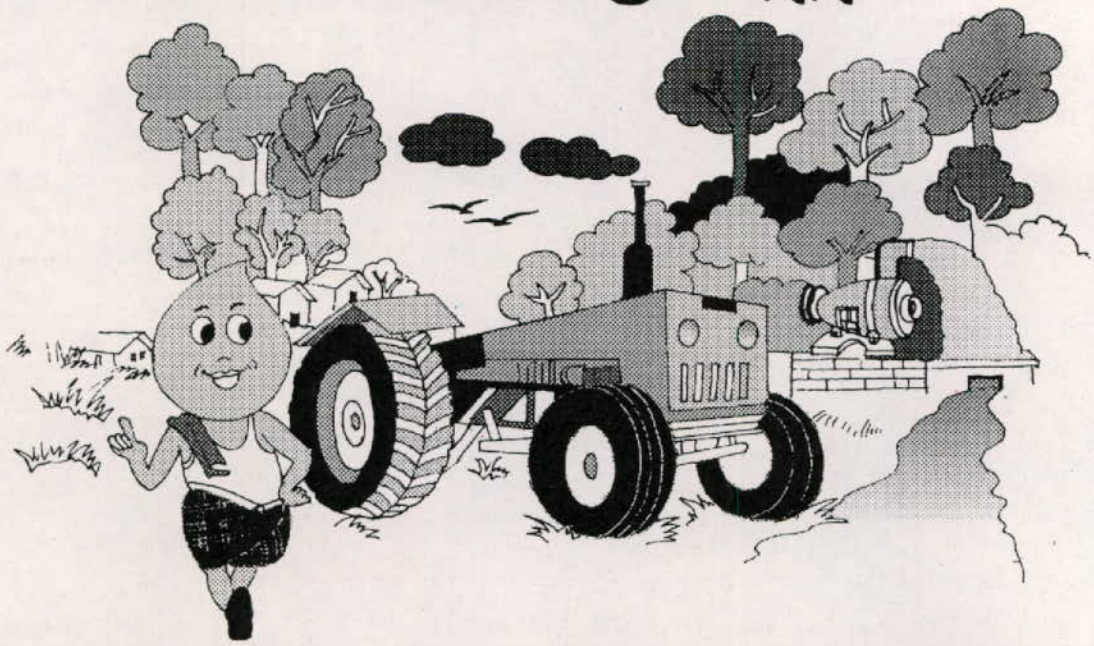

◆ स्वच्छ पर्यावरण ◆ प्रदूषण कम ◆ तेल की बचत

किसान भाइयों! अपने ट्रैक्टर और पम्प सैट को चलाते समय निम्नलिखित आजमाये हुए तरीकों का इस्तेमाल करके खुद के पैसे बचाओ और देश को खुशहाल बनाओ।

ट्रैक्टर चलाते समय निम्नलिखित तरीके अपनाकर 20% तक डीज़ल की बचत करें।

- ट्रैक्टर की नियमित रूप से सर्विस करवायें।
- एयर और ऑयल फिल्टर को हमेशा साफ रखें।
- तेल के रिसाव का तुरन्त रोकें।
- टायरों में हवा का दबाव सही रखें।
- खेत की जुताई लम्बी और सीधी रेखाओं में ही करें।

पम्प सैट चलाते समय निम्नलिखित तरीके अपनाकर 30% तक डीज़ल की बचत करें।

- पम्प सैट पानी की सतह से 10 फुट से कम की ऊँचाई पर रखें।
- पाइप में घुमाव (बैन्ड) और फिटिंग कम से कम हो।
- सिंचाई की जरूरतों के अनुसार पम्प और इंजन सही हॉर्स पावर वाले ही लगाएं।
- इंजन से अगर काला या भूरा धुंआ निकले तो उसकी जाँच तुरन्त करवायें।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें:

पेट्रोलियम कंजर्वेशन रिसर्च एसोसिएशन

603 न्यू दिल्ली हाऊस, 27 बाराखम्भा रोड, नई दिल्ली 110001
फोन 3316566, 3715228 फैक्स: 3715244 ईमेल: PCRAD@DEL2VSNL.NET.IN
पी सी आर ए वेबसाइट: http://www.pcra.org

संरक्षण से ध्यान हटाया, प्रदूषण ने पाँव जमाया • तेल का करें संरक्षण, तो स्वच्छ रहे पर्यावरण

गांवों में बेरोजगारी की समस्या

कृपा शंकर*

देश में गरीबी और बेरोजगारी दूर करने के लिए औद्योगीकरण का सहारा लिया गया। लेकिन इसमें सफलता नहीं मिली। इसके बाद गरीबी पर सीधा प्रहार करने के लिए समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, जवाहर रोजगार योजना आदि कार्यक्रम शुरू किए गए। परन्तु इन कार्यक्रमों पर अमल ठीक ढंग से नहीं हुआ। अब यह महसूस किया जाने लगा है कि नौकरशाही के भरोसे इन विकट समस्याओं का समाधान नहीं हो सकता। इसके लिए लोगों की भागीदारी अत्यंत आवश्यक है। लेखक के अनुसार वर्षा के पानी को व्यर्थ जाने से रोकने के लिए अवरोध बांध और बंधियां बनाने से लाखों लोगों को रोजगार मिल सकता है। इसके अलावा वृक्षारोपण, सड़क निर्माण, गोदाम निर्माण जैसे असंख्य ऐसे काम हैं जिनसे लाखों लोगों को गांव में ही रोजगार मिल सकता है और साथ ही स्थायी परिसंपत्तियों का निर्माण भी हो सकता है।

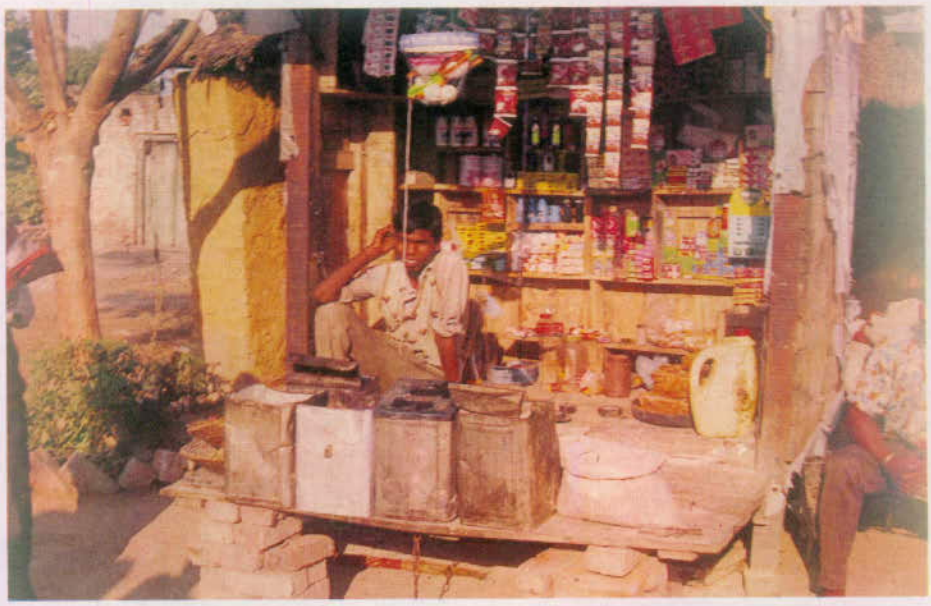

दुकान खोलना स्वरोजगार का एक अच्छा रास्ता है

पिछले पचास से अधिक वर्षों में विकास की जो भी गति रही हो बेरोजगारी की समस्या और भी जटिल हुई है। देश की जनसंख्या प्रतिवर्ष पौने दो करोड़ के हिसाब से बढ़ रही है और प्रतिवर्ष लगभग 75 लाख अतिरिक्त रोजगार के सृजन की आवश्यकता है। सार्वजनिक क्षेत्र में इस समय रोजगार प्रतिवर्ष एक लाख के हिसाब से बढ़ रहा है। निजी क्षेत्र के संगठित क्षेत्र में दो लाख अतिरिक्त रोजगार के अवसर पैदा हो रहे हैं। बाकी लोग असंगठित क्षेत्र में ही किसी प्रकार जीवन यापन करने को विवश होते हैं। खेतिहर श्रमिकों की संख्या 10 करोड़ से अधिक है और प्रतिवर्ष उनकी संख्या में 25 लाख की वृद्धि हो रही है। वर्ष के लगभग आधे भाग में इन लोगों के पास कोई काम नहीं रहता। कृषकों की संख्या में भी लगभग 30 लाख की वृद्धि प्रतिवर्ष हो रही है जिनमें दो तिहाई लोगों के पास एक हेक्टेयर से कम खेत हैं। ऐसे लोगों की यदि वार्षिक आय 20,000 रुपये भी मान ली जाए तो भी ऐसे परिवार गरीबी की रेखा के नीचे ही जीवन–यापन करने को विवश हैं।

* निदेशक, आर्थिक अनुसंधान केंद्र, इलाहाबाद

रोजगार के अवसरों में वृद्धि

योजनाकारों की यह धारणा रही है कि औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण के साथ साथ बेरोजगारी और अर्द्ध बेरोजगारी की समस्या समाप्त हो जाएगी और लोग समृद्ध हो जाएंगे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। अमरीका जैसे सबसे अधिक समृद्ध देश में भी लाखों लोग बेकार हैं और हाल के एक सर्वेक्षण के अनुसार 12 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन कर रहे हैं जबकि अरबपतियों की संख्या और दौलत में अपार वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए कम्प्यूटर

साफ्टवेयर कम्पनी माइक्रोसाफ्ट के स्वामी बिल गेट्स की निजी सम्पत्ति 85 अरब डालर है जो कई छोटे गरीब देशों की सम्मिलित आय से अधिक है। विश्व बैंक ने अपनी एक रिपोर्ट में यह चिन्ता व्यक्त की थी कि अब "रोजगार विहीन" विकास हो रहा है अर्थात् विकास तो हो रहा है लेकिन रोजगार के अवसर नहीं बढ़ रहे हैं। अपने देश में भी औद्योगिक उत्पादन में 6 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि हो रही है परन्तु उद्योगों में कार्यरत व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि नहीं हो रही है। सार्वजनिक क्षेत्र में विनिर्माण में लगे व्यक्तियों की संख्या 1990 में 18.7 लाख थी जो 1997 में घटकर 16.6 लाख हो गई। संगठित निजी क्षेत्र के विनिर्माण खण्ड में प्रतिवर्ष लगभग दो लाख रोजगार अवसरों की वृद्धि हो रही है।

गरीबी पर सीधा प्रहार

गांधी जी ने औद्योगीकरण और मशीनों का कदाचित इसीलिए विरोध किया था कि उत्पादन में चाहे जो भी वृद्धि हो वह विशाल जनसंख्या को रोजगार नहीं दे पाता। उन्होंने चरखे की बात इसलिए की कि जिनके पास जीविका का कोई अन्य साधन नहीं है वे चरखा चलाएं और किसान भी जब उसके पास खेत पर काम नहीं रहता चरखा चलाए। एक बार जब उनसे पूछा गया कि आप चरखा पर इतना जोर क्यों देते हैं तब उन्होंने कहा कि गांव के गरीबों की आमदनी बढ़ाने के लिए आप कोई दूसरा रास्ता बताएं तो मैं चरखे को तोड़ कर चूल्हे में जला दूंगा।

> मैनुअल में यह भी प्रावधान है कि खाते के संचालन के लिए प्रधान के अतिरिक्त ग्रामवासी एक अन्य व्यक्ति का चुनाव करेंगे जो उसी ग्राम का निवासी होगा। परन्तु सर्वेक्षण में यह पाया गया कि ग्राम पंचायत अधिकारी जो सरकारी कर्मचारी है सभी जगह सम्मिलित खातेदार बना हुआ था। इस प्रकार मैनुअल का खुल्लम–खुल्ला उल्लंघन हो रहा है।

गांधी जी के चिन्तन में गांव का गरीब केन्द्र में था परन्तु स्वतन्त्र भारत में योजनाकारों ने मूलरूप से आधुनिक उद्योगों की वृद्धि में ही गरीबी अन्त करने की आशा लगाई। जब यह स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा कि केवल औद्योगीकरण से निकट भविष्य में इस समस्या का हल सम्भव नहीं है तब गरीबी पर सीधा प्रहार करने की योजना समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) शुरू किया गया जिसके अन्तर्गत गरीबों को स्वरोजगार के लिए कुछ साधन कर्ज के रूप में दिये जाने लगे जिसमें छूट का समावेश था.।

गांव में जो सबसे गरीब थे उनके पास

वृक्षारोपण ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने का एक अच्छा उपाय सिद्ध हो सकता है

कोई भूमि नहीं थी, उन्हें यदि भैस दे दी जाए तो वे उसे तभी तक पाल सकते हैं जब तक वह दूध देती रहे। जब दूध बन्द हो जाएगा तब वे उसके लिए कहां से चारा भूसा लाएंगे।

यही बात दुकान आदि के बारे में भी लागू है। जिस गरीब आदमी ने कभी दुकानदारी न की हो उसके लिए दुकान चलाना मुश्किल है। काफी समान उधार देना पड़ेगा क्योंकि उसके ग्राहक भी उसी की तरह गरीब होंगे। दुबारा समान लाने के लिए जब पैसा पास में नहीं होगा तो सिवा दुकान बन्द करने के कोई और उपाय नहीं बचेगा। इस योजना के अन्तर्गत लिया गया कर्ज ब्याज सहित चुकाना पड़ता है जिसपर ब्याज मूल में जुड़ता रहता है। भ्रष्टाचार की बात अलग भी कर दी जाए तब भी यह योजना सबसे गरीब के लिए सार्थक नहीं थी। जो लोग कभी–कभी दैनिक खर्च के लिए कर्ज लेते हैं उन पर एक और बड़े ऋण का बोझ सहायक नहीं हो सकता।

इसका यह अर्थ नहीं कि इस योजना से कोई भी वास्तविक रूप से लाभान्वित नहीं हुआ। परन्तु ऐसे लोगों की संख्या नगण्य है। प्रारम्भ में तो गरीबों को भी यह अच्छा लगी परन्तु बाद में जब वसूली होने लगी तो, लोग कतराने लगे। परन्तु फिर भी यह योजना चालू है क्योंकि सबसे अधिक लाभ उन दलालों को होता है जो कर्ज आदि दिलवाते हैं। लेखक को अपने सर्वेक्षण और भ्रमण के दौरान ऐसे भी तथ्य मिले जहा दलालों ने गरीबों के नाम पर आई.आर.डी. स्कीम में पैसा निकालकर छूट का पैसा हजम कर गए और बाकी पैसा वापस कर दिया। यह योजना की सफलता मानी गई कि जितना कर्ज वसूलना था वह पूरा वसूल हो गया। समन्वित ग्राम विकास योजना पर प्रतिवर्ष केन्द्रीय सरकार लगभग 900 करोड़ रुपये व्यय करती रही है।

ग्रामीणों की जरूरतों पर ध्यान

गरीबी उन्मूलन में इन्दिरा आवास योजना पर प्रतिवर्ष केन्द्रीय सरकार 1,700 करोड़ रुपये व्यय कर रही है, जो समन्वित ग्रामीण विकास के व्यय का लगभग दोगुना है। यहां यह प्रश्न उठता है कि सबसे गरीब व्यक्ति की सबसे बड़ी जरूरत क्या है? उसे पहले रोजगार मिलना चाहिए। यदि काम मिलेगा तभी वह भरपेट भोजन कर सकेगा, बच्चों को स्कूल भेज सकेगा, दवा दारू कर सकेगा और मकान की मरम्मत भी कर सकेगा। सुनिश्चित जीविका के अभाव में पक्का कमरा मिल जाए तो यह ठीक है लेकिन यह उसकी गरीबी का निदान नहीं है।

इन सब योजनाओं में जवाहर रोजगार योजना सबसे अधिक प्रभावशाली रही है क्योंकि इसके अन्तर्गत सीधे ग्राम पंचायतों को जल संरक्षण, वृक्षारोपण, सम्पर्क–मार्ग निर्माण तथा अन्य विकास कार्यों के लिए धन दिया जाता है। केन्द्रीय सरकार इस योजना पर वार्षिक 2,000 करोड़ रुपये से अधिक व्यय कर रही है। इस योजना के अन्तर्गत ग्रामीण रोजगार मन्त्रालय ने जो मैनुअल जारी किया है यदि उस पर अक्षरशः पालन हो तो ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसर बढ़ाने में यह बहुत सहायक सिद्ध होगी परन्तु मैनुअल में ऐसा बहुत कुछ है जिसका नौकरशाही और ग्राम प्रधान पालन नहीं करते। उदाहरण के लिए मैनुअल में इस बात का प्रावधान है कि ग्राम में प्रमुख स्थान पर जैसे स्कूल या पंचायत भवन की दीवाल पर यह लिखा जाएगा कि अमुक पंचायत को किस कार्य के लिए कितनी राशि मिली। लेखक ने कई जनपदों में इस योजना का सर्वेक्षण किया परन्तु किसी ग्राम में कहीं भी यह सूचना न तो लिखी मिली और न तो किसी ग्रामवासी को यह पता था कि कितनी धनराशि मिली है। ब्लाक कार्यालय पर भी ऐसी कोई सूचना सार्वजनिक रूप से उपलब्ध नहीं थी। यदि सभी ग्रामवासियों को यह मालूम रहे कि ग्राम में कितनी धनराशि आई है तो प्रधान गड़बड़ी नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में सब के सामने उसे लज्जित होना पड़ेगा परन्तु जब धनराशि के बारे में कोई जानकारी नहीं है तो कोई व्यक्ति उससे कुछ नहीं पूछ सकता और हेरा फेरी करने पर भी उसका सम्मान बना रहता है।

मैनुअल में यह भी प्रावधान है कि खाते के संचालक के लिए प्रधान के अतिरिक्त ग्रामवासी एक अन्य व्यक्ति का चुनाव करेंगें जो उसी ग्राम का निवासी होगा। परन्तु सर्वेक्षण में यह पाया गया कि ग्राम पंचायत अधिकारी जो सरकारी कर्मचारी है सभी जगह सम्मिलित खातेदार बना हुआ था। इस प्रकार मैनुअल का खुल्लमखुल्ला उल्लंघन हो रहा है परन्तु चूंकि यह नौकरशाही के हित में है, इस पर कोई आक्षेप नहीं हो रहा है। ऐसी स्थिति में यह पाया गया कि ग्राम पंचायत अधिकारी हावी हो जाता है और ग्राम प्रधान को वही करना पड़ता है जो वह चाहता है। पिछड़े जिलों के अति पिछड़े भागों जैसे विंध्य और कैमूर पर्वतमाला के कोड़ में बसे कई आदिवासी ग्रामों में इस योजना के कार्यान्वयन का कोई चिन्ह नहीं मिला।

सुनिश्चित रोजगार योजना पर भी 1,700 करोड़ रुपए वार्षिक व्यय हो रहा है परन्तु इसका कार्यान्वयन खण्ड विकास अधिकारी द्वारा होता है जिसकी कोई जानकारी ग्रामवासियों को नहीं होती। स्वर्गीय राजीव गाधी कहा करते थे कि रुपये में केवल 15 पैसे ही ग्राम तक पहुंच पाता है। उन्होंने

ग्राम पंचायतों को अधिकार देने की दिशा में संविधान में 73वां संशोधन किया जिसके अर्न्तगत पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हुआ और ग्रामीण विकास से सम्बन्धित 29 विभागों को उन्हें सौंपा गया। परन्तु राज्य सरकारें इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाना चाहतीं। नौकरशाही तो इसके विरुद्ध है ही, राजनेता भी नहीं चाहते कि पंचायत या ग्रामवासियों का सशक्तिकरण हो क्योंकि ऐसी स्थिति में उनका रुतबा कम हो जाएगा।

ग्रामीण विकास के पिछले दशकों का यदि कोई अनुभव है तो वह यह है कि नौकरशाही के माध्यम से विकास सम्भव नहीं है। इसकी पहली शर्त यह है कि संविधान के 73वें संशोधन के अनुसार ग्राम स्तर के सारे कार्य पंचायतों को पूर्णरूप से हस्तान्तरित कर दिए जाएं,

यदि सभी ग्रामों में पानी बहने की दिशा में छोटे–छोटे अवरोध बांध और बन्धियां बना दी जाएं तो वर्षा का पानी मिट्टी को नहीं काट पाएगा। इस संचित पानी से सिंचाई के लिए ग्राम में ही सुविधा बढ़ जाएगी। भूगर्भ का पानी ऊपर आने से कुओं आदि से सिंचाई सरल हो जाएगी। इन कार्यों में गांव के मजदूरों को गांव में ही काम का अवसर सुलभ होगा और उनके रख–रखाव में कुछ लोगों को नियमित रूप से काम मिल सकेगा।

सारी धनराशि उन्हीं के माध्यम से खर्च की जाए और सरकारी, तथा अर्द्ध सरकारी कर्मचारी भी ग्राम पंचायत तथा जिला पंचायत के अधीन हों। गांधी जी के ग्राम स्वराज की भी यही कल्पना थी कि नौकरशाही कहीं भी नहीं रहेगी परन्तु इस दिशा में प्रगति नहीं हो पा रही है।

लोगों की भागीदारी अनिवार्य

विकास के प्रति जो उदासीनता बनी हुई है उसका मुख्य कारण यह है कि लोगों की उसमें कोई भागीदारी नहीं है। सरकारी कर्मचारी जनता के प्रति जबाबदेह नहीं है और न ही उन पर किसी प्रकार का अंकुश है। भ्रष्टाचार और लूट को इससे बढ़ावा मिलता है। इसके विपरीत यदि यह नियम कर दिया जाए कि ग्राम विकास के सारे कार्य ग्राम समाज के सभी लोग मिलकर करेंगे, हर कार्य में पारदर्शिता होगी और कोई व्यक्ति मनमानी नहीं कर सकता तो ग्रामों में एक नए जीवन का स्पन्दन होगा क्योंकि उन्हें लगेगा कि विकास की कुंजी अब उनके हाथों में आ गई है और ग्राम–स्तर पर सभी प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों का भरपूर प्रयोग करना उनकी जिम्मेदारी है। वर्षा के पानी के समुचित उपयोग की बात ही लें। वर्षा कुछ ही महीने होती है और तेज बारिश के कारण प्रतिवर्ष ऊपर की 600 करोड़ टन उपजाऊ मिट्टी बह जाती है। पानी के इस बहाव के कारण 14 करोड़ हेक्टेयर भूमि बेकार हो गई है। देश में खेती भी इतनी भूमि पर होती है। यदि सभी ग्रामों में पानी के बहने की दिशा में छोटे–छोटे अवरोध बांध और बन्धियां बना दी जाएं तो वर्षा का पानी मिट्टी को नहीं काट पाएगा। इस संचित पानी से सिंचाई के लिए ग्राम में ही सुविधा बढ़ जाएगी। भूगर्भ का पानी ऊपर आने से कुओं आदि से सिंचाई सरल हो जाएगी। इन कार्यों में गांवों के मजदूरों को गांव में ही काम का अवसर सुलभ होगा और उनके रख–रखाव में कुछ लोगों को नियमित रूप से काम मिल सकेगा।

रालेगन सिद्धी का अनुकरण करें

जल और मृदा संरक्षण के अकेले इस कार्य में गांव के रोजगार विहीन या अर्ध बेरोजगार लोगों के बड़े भाग को काम मिल सकता है। महाराष्ट्र के रालेगन सिद्धी ग्राम में पानी को इसी प्रकार संचित कर उस ग्राम की कायापलट हो गई है जहां पानी के अभाव में पहले कोई खेती नहीं हो पाती थी। देश में करीब 6 लाख गांव हैं। यदि मान लिया जाए कि प्रति गांव औसतन 5 आदमी इस कार्य में नियमित रूप से लग सकते हैं तो 30 लाख व्यक्ति अकेले इसी कार्यक्रम में खप सकते हैं। इसके लिए उन्हें कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है। यदि यह मान लिया जाए कि एक व्यक्ति को महीने में 2,000 रुपये मजदूरी के रूप में देना होगा तो 30 लाख व्यक्तियों पर प्रतिवर्ष लगभग 7,000 करोड़ रुपये व्यय करना पड़ेगा। भारत सरकार राजस्व खाते में प्रतिवर्ष 3,30,000 करोड़ रुपये व्यय करती है। जल ग्रहण का उपरोक्त व्यय कुल व्यय का मात्र 2 प्रतिशत है। भारत सरकार अपने बजट से जल और मृदा संरक्षण पर 200 करोड़ रुपये प्रति वर्ष व्यय करती है जो राजस्व व्यय का 0.06 प्रतिशत है। नवीं पंचवर्षीय योजना में इस मद के प्रतिशत में कोई वृद्धि नहीं की गई है।

जो कार्य कृषि उपज को बढ़ाने में सबसे अधिक प्रभावशाली है और जिसमें ग्रामीणों को गांव में ही काम मिलने की बहुत सम्भावनाएं है उसके प्रति इस प्रकार की उपेक्षा ही हमारी गरीबी और बेरोजगारी के लिए जिम्मेदार है।

भूमि का दुरुपयोग कैसे रोकें

वृक्षारोपण और वानिकी का कार्य भी इसी प्रकार ग्राम में ही असंख्य लोगों को रोजगार का अवसर प्रदान कर सकता है। वर्षा के लिए प्रदूषण को रोकने तथा मिट्टी को कटने से रोकने में वृक्षों की बड़ी भूमिका है। जनसंख्या

देश में करीब छह लाख गांव हैं। यदि मान लिया जाए कि प्रति गांव औसतन 5 आदमी इस कार्य में नियमित रूप से लग सकते हैं तो 30 लाख व्यक्ति अकेले इसी कार्यक्रम में खप सकते हैं। इसके लिए उन्हें कहीं बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है।

के बढ़ने के कारण वृक्षों की कटान बढ़ी है। जंगल समाप्त हो रहे हैं। 1950–51 में जंगलों के अतिरिक्त देश में 200 लाख हेक्टेयर भूमि वृक्षों से आच्छादित थी, जो केवल दस वर्षों अर्थात 1960–61 में घटकर 40 लाख हेक्टेयर हो गई। देश में कृष्य बेकार भूमि 150 लाख

(शेष पृष्ठ 72 पर)

ग्रामीण बेरोजगारी – एक गम्भीर चुनौती

डा. उमेश चन्द्र अग्रवाल*

सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों से गरीबी और बेरोजगारी दूर करने के प्रयास पांचवीं पंचवर्षीय योजना से ही जोर शोर से शुरू कर दिए थे। पांचवीं और छठी योजना के दौरान समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ट्राइसेम आदि कार्यक्रम प्रारम्भ किए गए। इन कार्यक्रमों से कुछ सफलता तो मिली परन्तु इन कार्यक्रमों पर जो भारी भरकम धनराशि खर्च की गई उसके अनुरूप इन कार्यक्रमों की उपलब्धियों को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। देश में इस समय भी करीब एक तिहाई जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बसर करने को मजबूर है। लेखक ने इन कार्यक्रमों को अपेक्षित असफलता के कारणों में जनसंख्या वृद्धि को प्रमुख बताया है। इसके अलावा उन्होंने इन कार्यक्रमों की विफलता के लिए जन भागीदारी का अभाव, योजनाओं में आपसी तालमेल न होना और योजनाओं के तैयार करने में जल्दबाजी आदि कुछ अन्य कारण गिनाए हैं।

आज हमारा समाज, हमारे नौजवान और यहां तक हमारी अर्थव्यवस्था जिन प्रमुख समस्याओं से ग्रसित है उनमें से बेरोजगारी सर्वाधिक चिन्ता का विषय है। हमारी सबसे प्रमुख विडम्बना यह है कि लोग काम करना चाहते हैं किन्तु उन्हें काम नहीं मिल पाता और यदि मिलता भी है तो वह या तो पूरे समय का नहीं मिलता, या सभी महीनों और ऋतुओं में नहीं मिलता अथवा वह उनकी योग्यताओं और क्षमताओं के अनुसार नहीं होता है। देश की विशाल मानवीय पूंजी अथवा सम्पूर्ण श्रम शक्ति, जिसमें 15 से 60 वर्ष की आयु के कार्यशील लोग सम्मिलित हैं, का सर्वोत्तम उपयोग नहीं हो पाना हमारे यहां गरीबी और पिछड़ेपन का मूल कारण है। चाहे ग्रामीण क्षेत्र हों अथवा शहरी, आज प्रत्येक परिवार का कोई न कोई व्यक्ति बेरोजगार, अर्द्ध बेरोजगार अथवा अल्प बेरोजगार है जिसका परिणाम यह है कि हमारा पूरा देश और समाज बेरोजगारी, निर्धनता और पिछड़ेपन के निरन्तर चलने वाले दुष्चक्र से बुरी तरह प्रभावित है।

आजादी के पिछले 53 वर्षों में अथवा वर्ष 1951 से पंचवर्षीय योजनाओं के शुरू होने के बाद योजनाबद्ध विकास के पिछले 49 वर्षों में आठ पंचवर्षीय योजनाएं पूरी कर लेने के बाद भी देश में रोजगार की बढ़ती आवश्यकताओं के अनुरूप रोजगार के अवसर बढ़ाने में हम लगभग असफल ही रहे हैं। देश में तीव्र गति से बढ़ती जनसंख्या, गांवों में कृषि योग्य भूमि के होते हुए निरन्तर विखण्डन से प्रति व्यक्ति भूमि की उपलब्धता में कमी, कृषि का यंत्रीकरण, शहरी क्षेत्रों में बढ़ता औद्योगीकरण, नौकरी के प्रति युवकों का बढ़ता आकर्षण जैसे अनेक कारणों ने बेरोजगारी की स्थिति को, विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में, अधिक विकराल बना दिया है।

यों तो देश के शहरी और ग्रामीण दोनों प्रकार के क्षेत्र बेरोजगारी के दुश्चंक्र से भयानक रूप से ग्रसित हैं लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की भयानकता शहरी क्षेत्रों की तुलना में कहीं अधिक है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन, नई दिल्ली (एन.एस.एस.ओ) द्वारा हाल ही में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार देश की बेरोजगारी में 62 प्रतिशत भाग ग्रामीण बेरोजगारी का तथा 38 प्रतिशत भाग शहरी बेरोजगारी का है। देश भर में फैले हुए 5,80,781 गांवों में बेरोजगारी कई रूपों में देखने को मिलती है। ग्रामीण बेरोजगारी को मुख्य रूप से तीन प्रकार की बेरोजगारी के अंतर्गत बांटा जा सकता है। इनमें से पहली है – मौसमी बेरोजगारी, जिसका तात्पर्य है कि वहां मौसम विशेष में तो लोगों को काम या रोजगार मिलता है परन्तु बाद में नहीं मिलता। दूसरी अदृश्य बेरोजगारी, जिसका तात्पर्य है कि लोग कार्य में लगे हुए तो दिखाई देते हैं लेकिन वास्तव में वे पूरी तरह उत्पादक कार्य नहीं करते जैसे कृषक और उनके परिवार के सभी लोग यद्यपि वर्ष के सभी दिनों में खेती के कार्य में कुछ न कुछ करते तो रहते हैं लेकिन धनार्जन की मात्रा

* संयुक्त निदेशक (प्रशिक्षण), राज्य नियोजन संस्थान, उ.प्र. कालाकांकर भवन, पुराना हैदराबाद, लखनऊ–226007

कुल लगे हुए लोगों की तुलना में बहुत कम होती है। और तीसरी, अर्द्ध–बेरोजगारी, जिसका तात्पर्य होता है – व्यक्ति को उसकी योग्यता, दक्षता और क्षमता के अनुसार रोजगार उपलब्ध नहीं होना। इससे लोगों की कार्य–क्षमता और आय की मात्रा तो प्रभावित होती ही है, साथ ही अर्थव्यवस्था पर इसके दूरगामी दुष्प्रभाव पड़ते हैं।

ग्रामीण बेरोजगारी के सम्बन्ध में यह तथ्य विशेष रूप से विचारणीय है कि देश के ग्रामीण क्षेत्रों में फैली बेरोजगारी दूर करने के लिए योजनाबद्ध विकास के प्रारम्भिक वर्षों में सरकार ने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया और योजनाकारों द्वारा प्रारम्भ में इस धारणा को लेकर चला गया कि पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश में आर्थिक विकास के लिए किए जा रहे प्रयत्नों से सभी क्षेत्रों में रोजगार के पर्याप्त अवसर बढ़ेंगे और इससे होने वाले आर्थिक विकास के परिणामस्वरूप बढ़ती हुई श्रमशक्ति के लिए रोजगार की समुचित स्थितियां उपलब्ध हो सकेंगी। लेकिन कुछ ही वर्षों में यह धारणा निर्मूल साबित हुई और रोजगार सृजन पर, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में, विशेष बल देने की आवश्यकता महसूस की गई। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन अथवा बेरोजगारी निवारण की विशेष प्रकार की योजनाओं और कार्यक्रमों का

तालिका–1

ग्रामीण क्षेत्रों में चलाई गयी रोजगार–परक विभिन्न योजनाओं का विवरण

क्र. सं.	कार्यक्रम / योजना का नाम	प्रारम्भ होने का वर्ष	प्रमुख उद्देश्य	अन्य विवरण / उपलब्धि
1.	ग्रामीण जनशक्ति कार्यक्रम (आर.एम.पी.)	1960–61	25 लाख ग्रामीण लोगों को वर्ष में कम से कम 100 दिवसों का रोजगार उपलब्ध कराना।	प्रयोग के तौर पर 32 सामुदायिक विकास खण्डों में 1968–69 तक चलाया गया जिसमें 13.7 करोड़ मानव दिवसों का रोजगार सृजित हुआ।
2.	ग्रामीण रोजगार क्रैश कार्यक्रम (आर.ई.सी.सी.)	1971–72	ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन करते हुए श्रम आधारित कार्यों को कराकर वहां स्थायी सम्पत्तियों का सृजन करना।	तीन वर्ष तक चलाए गए कार्यक्रम से 350 जिलों में प्रत्येक जिले में प्रति वर्ष 1,000 व्यक्तियों को रोजगार उपलब्ध कराया गया।
3.	पाइलट गहन ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (पी.आर.आई.ई.पी.)	1972–73	ग्रामीण क्षेत्रों के अकुशल श्रमिकों को वहां अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराना।	तीन वर्ष तक 15 चयनित विकास खण्डों में चलाए गए इस कार्यक्रम से 1 करोड़. 82 लाख मानव दिवसों का रोजगार सृजित हुआ।
4.	सूखा ग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम (डी.पी.ए.पी.)	1973–74	सूखे से प्रभावित ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को श्रम तथा उत्पादन आधारित कार्यों में लगाकर उन्हें रोजगार उपलब्ध कराना तथा प्राकृतिक संसाधनों को विकसित कर पर्यावरण संतुलन बनाना।	13 राज्यों के सूखाग्रस्त क्षेत्रों के 947 विकास खण्डों में चलाया जा रहा है अब तक इस पर 1,742 करोड़ रुपये व्यय किए गए हैं।
5.	काम के बदले अनाज योजना (एफ.एफ.डब्ल्यू.पी.)	1977–78	राज्यों के स्टाक में उपलब्ध खाद्यान्न का उपयोग करते हुए ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर सृजित करते हुए विकास कार्य करना।	दो वर्षों तक चलाए गए इस कार्यक्रम में 9 करोड़ 50 लाख मानव दिवसों का कार्य सृजित किया गया।
6.	मरुभूमि विकास कार्यक्रम (डी.डी.पी.)	1977–78	मरुस्थलीय क्षेत्रों में पारिस्थितिकीय संतुलन बहाल करते हुए वहां श्रम आधारित रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।	शत प्रतिशत केन्द्रीय सहायता से संचालित इस कार्यक्रम पर 227 विकास खण्डों में 670 करोड़ रुपये से भी अधिक की धनराशि व्यय की जा चुकी है।
7.	ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.)	1983–84	ग्रामीण भूमिहीनों के परिवारों में कम से कम एक सदस्य को न्यूनतम 100 दिनों के रोजगार के अवसर उपलब्ध कराना।	इस योजना में केन्द्र सरकार ने राज्यों को प्रारंभ में ही 500 करोड़ रुपये का धनावंटन किया और इसकी उपयोजना के रूप में इंदिरा आवास योजना को संचालित करने का निर्णय लिया गया।

8. जवाहर रोजगार योजना (प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय स्ट्रीम) (जे.आर.वाई.)	1989–90	ग्रामीण पुरुषों और महिलाओं को अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध कराकर गांवों में सामुदायिक परिसम्पत्तियों का निर्माण करना तथा ग्रामीणों के जीवन स्तर में सुधार लाना।	केन्द्र और राज्य सरकार के 80:20 के आर्थिक सहयोग से ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम तथा राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम को सम्मलित करके इस नई योजना को संचालित किया गया जिसमें कुल 1,800 करोड़ रुपये व्यय करके 29 करोड़ मानव दिवसों का रोजगार सृजित किया गया है।
9. सुनिश्चित रोजगार योजना (ई.ए.एस.)	1993–94	ग्रामीण क्षेत्रों में गैर कृषि मौसम में गरीबों को वर्ष में कम से कम 100 दिन का श्रम आधारित लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना।	केन्द्र और राज्य सरकार में 80:20 के आर्थिक सहयोग से आवश्यकता आधारित योजना के रूप में विशेष रूप से सूखा रेगिस्तानी, आदिवासी तथा पहाड़ी क्षेत्रों में चलाई गयी। अब इसे पूरे देश में लागू कर दिया गया है। अब तक इस योजना पर 8,019 करोड़ रुपये व्यय करके 154.16 करोड़ मानव दिवसों का रोजगार उपलब्ध कराया गया है।
10. जवाहर ग्राम समृद्धि योजना (जे.जी.एस.वाई.)	1999–2000	ग्रामीण क्षेत्र के गरीब लोगों को पूरक रोजगार उपलब्ध कराते हुए स्थायी परिसम्पत्तियों का सृजन करना।	जवाहर रोजगार योजना को अधिक प्रभावी और व्यावहारिक बनाते हुए अप्रैल '99 से इसका नाम जवाहर ग्राम समृद्धि योजना किया गया है।

अन्य प्रमुख स्वरोजगार योजनाएं

11. समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.)	1980–81	ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों को आर्थिक रूप से लाभकारी परिसम्पत्तियां उपलब्ध कराकर स्वरोजगार अपनाने हेतु प्रेरित करके उन्हें गरीबी की रेखा से पार करने हेतु समर्थ बनाना।	केन्द्र तथा राज्य सरकारों की बराबर की भागीदारी से 31 हजार करोड़ रुपये निवेशित करके अब तक 5 करोड़ 27 लाख गरीबों को गरीबी की रेखा से ऊपर लाया जा सका है।
12. ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राइसेम)	1979–80	गरीब ग्रामीण युवाओं को तकनीकी तथा उद्यमशीलता की कुशलताएं प्रदान कर उन्हें स्वरोजगार स्थापित करने हेतु योग्य बनाना।	इस योजना में 41.5 लाख ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण प्रदान किया गया है जिसमें अनुसूचित जाति/जनजाति के 18 लाख सदस्य तथा 19 लाख महिलाएं भी सम्मिलित हैं।
13. ग्रामीण महिला तथा बाल विकास योजना (डवाकरा)	1982–83	गरीब परिवार की महिलाओं को समूहों में संगठित कर लघु और कुटीर उद्योगों में प्रशिक्षण प्रदान कर उन्हें स्वरोजगार अपनाने में मदद कर उनके सामाजिक, आर्थिक स्तर में सुधार करना।	आई.आर.डी.पी. की एक उपयोजना के रूप में इस योजना को चलाते हुए अब तक 2.2 लाख महिला समूहों का गठन करके 35 लाख महिलाओं को लाभान्वित किया गया है।
14. स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना (एस.जी.एस.वाई.)	1999–2000	ग्रामीण गरीबों को स्वयं सहायता समूहों के गठन के माध्यम से उन्हें स्वरोजगार उपलब्ध कराते हुए सामर्थ्य प्रदान करने के निमित्त गांवों में छोटे–छोटे उद्योगों की स्थापना करना।	आई.आर.डी.पी., ट्राइसेम, डवाकरा, सिट्रा गंगा–कल्याण योजना तथा दस लाख कुओं की योजना को समन्वित करके 1 अप्रैल '99 से स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना को संचालित किया गया है।

क्रियान्वयन प्रारम्भ हुआ। शुरू–शुरू में इन योजनाओं को छोटे पैमाने पर और कुछ विशेष क्षेत्रों में प्रयोग के तौर पर आरम्भ किया गया। योजनाओं के क्रियान्वयन में आने वाली कठिनाइयों का निराकरण करते हुए कुछ योजनाओं को समय–समय पर संशोधित करते हुए अधिक व्यावहारिक और उद्देश्यपरक बनाने के प्रयास भी किए गए। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन के

लिए चलाई गई प्रमुख योजनाओं का विवरण निम्नवत् है :

प्रमुख ग्रामीण रोजगार योजनाएं

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में समय–समय पर चलाई गई विभिन्न रोजगार–परक योजनाओं के विवरण की तालिका–एक से स्पष्ट है कि इस दिशा में पहला प्रयास वर्ष 1960–61 में *ग्रामीण जनशक्ति कार्यक्रम* नामक योजना चलाकर किया गया। इस कार्यक्रम को प्रयोग के तौर पर केवल 32 सामुदायिक विकास खण्डों में चलाया गया जिसका मुख्य उद्देश्य तृतीय पंचवर्षीय योजना के अन्तिम वर्ष तक कम से कम 25 लाख ग्रामीण लोगों को 100 दिन का रोजगार उपलब्ध कराना रखा गया। इसके बाद समय–समय पर अन्य कार्यक्रम और योजनाएं शुरू कर ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने के प्रयास किए जाते हैं। गत वर्ष पहली अप्रैल से इन योजनाओं के स्वरूप में परिवर्तन किया गया है।

परिवद्धित योजनाएं

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना को पहली अप्रैल 1999 से पूर्व से चली आ रही जवाहर रोजगार योजना को अधिक प्रभावी और व्यावहारिक बनाने के उद्देश्य से इसके नाम में संशोधन करके पूरे देश में एक साथ लागू किया गया है। वास्तव में यह योजना जवाहर रोजगार योजना का परिवर्तित और संशोधित रूप है। जवाहर रोजगार योजना में कुछ ऐसी आधारभूत कमियों का अनुभव किया जा रहा था जिसके कारण यह योजना अपने निर्धारित उद्देश्यों को पूरा करने में पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पा रही थी। जैसे स्थायी परिसम्पत्तियों के निर्माण में श्रम और सामग्री का अनुपात क्रमशः 60:40 प्रतिशत रखना अनिवार्य था। इस अनिवार्यता के कारण इस योजना के क्रियान्वयन में गलत सूचनाएं और आंकड़े दिए जाते थे। योजना के अन्तर्गत कार्य पर लगाए श्रमिकों को मजदूरी की न्यूनतम दरों पर भुगतान का प्रावधान होने और इन दरों पर श्रमिकों के उपलब्ध नहीं हो पाने के कारण सामान्यतया मस्टर रोल गलत तरीके से भरे जाते थे और परिणामस्वरूप काफी मात्रा में संसाधनों का दुरुपयोग भी होता था। इस प्रकार की कुछ अन्य कमियों और कठिनाइयों का इस संशोधित योजना में निराकरण करने का प्रयास किया गया है।

इस नई योजना के तीन प्रमुख उद्देश्य रखे गए हैं जिनमें पहला है – ग्राम स्तर पर स्थायी तथा टिकाऊ परिसम्पत्तियों का सृजन करना, दूसरा – ग्रामीण क्षेत्रों में अनुसूचित जाति तथा जनजाति के लोगों को स्थायी तथा टिकाऊ रोजगार उपलब्ध कराने के दृष्टिकोण से उत्पादक परिसम्पत्तियों का सृजन करना तथा तीसरा मुख्य उद्देश्य है – गरीबी की रेखा के नीचे जीवन–यापन करने वाले बेरोजगारों को रोजगार उपलब्ध कराना। इस योजना में 75 प्रतिशत वित्तीय संसाधन केन्द्र सरकार द्वारा तथा शेष 25 प्रतिशत राज्य सरकारों द्वारा उपलब्ध कराए जाने की व्यवस्था की गई है। यह योजना चुनी हुई ग्राम पंचायतों के माध्यम से उनके पूर्ण नियन्त्रण में चलाए जाने की व्यवस्था है ताकि गांवों की आवश्यकता और गांववासियों की अपेक्षाओं के अनुरूप वहां विकास–कार्य अधिक प्रभावी ढंग से चलाए जा सकें।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना को अधिक प्रभावी बनाने के उद्देश्य से इसके अन्तर्गत प्राप्त बजट राशि के समुचित प्रकार से आवंटन की व्यवस्था की गई है। जिसमें बजट की 22.5 प्रतिशत धनराशि केवल अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति/गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों के लिए सम्पत्तियों के सृजन पर व्यय की जाएगी। साथ ही कुल राशि की 7.5 प्रतिशत राशि अथवा 7,500 रुपये में से जो भी कम हो, वह राशि प्रशासनिक व्यय के लिए आरक्षित रहेगी। बजट की 15 प्रतिशत राशि पहले से सृजित सम्पत्तियों के रख–रखाव पर व्यय की जा सकेगी तथा अवशिष्ट 55 प्रतिशत राशि ग्रामीण आधारभूत सुविधाओं जैसे सड़क निर्माण आदि पर व्यय की जाएगी। योजना के अन्तर्गत 50 हजार रुपये के निर्माण–कार्य ग्राम सभा के अनुमोदन के पश्चात बिना किसी प्रकार के तकनीकी और प्रशासनिक स्वीकृति के ग्राम पंचायत के स्वयं के स्तर पर निष्पादित किए जा सकेंगे।

प्रमुख स्वरोजगार योजनाएं और उनकी उपलब्धियां

ग्रामीण क्षेत्र के गरीब लोगों को वित्तीय सहायता के माध्यम से स्वरोजगार उपलब्ध कराकर उनकी गरीबी दूर करने तथा उन्हें स्थायी उत्पादक परिसम्पत्तियां उपलब्ध कराने हेतु भी सरकार द्वारा समय–समय पर कई योजनाओं और कार्यक्रमों का संचालन किया जाता रहा है। इस दिशा में एक वृहद और विशिष्ट कार्यक्रम पूरे देश में 2 अक्तूबर 1980 से *समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम* के रूप में लागू किया गया। इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण गरीबों को गरीबी की रेखा पार करने के लिए समर्थ बनाना था। इस उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु लक्षित समूहों को उत्पादक परिसम्पत्तियां प्रदान करके उन्हें स्वरोजगार उपलब्ध कराए जाने की व्यवस्था की गई। यह योजना केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा

50:50 के अनुपात में वित्त पोषित होती रही। योजना में गरीबी रेखा के नीचे के अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, महिलाओं तथा शारीरिक रूप से विकलांग लोगों को प्राथमिकता के आधार पर लाभान्वित करने पर बल दिया गया। योजना के अन्तर्गत अब तक 31,000 करोड़ रुपये की धनराशि निवेशित कर 5 करोड़ 27 लाख ग्रामीण गरीबों को गरीबी की रेखा के ऊपर लाना कार्यक्रम की विशिष्ट उपलब्धि कही जा सकती है। पहली अप्रैल 1999 से इस कार्यक्रम का विलय *स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना* में कर दिया गया है।

ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राइसेम) को 15 अगस्त 1979 से इस उद्देश्य के साथ प्रारम्भ किया गया था कि गरीबी की रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाले परिवारों के ग्रामीण युवाओं को तकनीकी और उद्यमशीलता की कुशलताएं प्रदान करके उन्हें स्वरोजगार में लगा कर उनकी गरीबी दूर की जा सके। इस कार्यक्रम में 50 प्रतिशत स्थान अनुसूचित जाति तथा जनजाति के युवाओं तथा 40 प्रतिशत स्थान महिलाओं के निर्धारित किए गए और विभिन्न संस्थाओं के माध्यम से लाभार्थियों को विभिन्न उपयोगी क्षेत्रों में व्यावहारिक प्रशिक्षण प्रदान कर उन्हें स्वरोजगार स्थापित करने हेतु आवश्यक ऋण आदि की व्यवस्था भी सुनिश्चित की गई। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत अब तक 41.5 लाख ग्रामीण युवक–युवतियों को लाभान्वित किया गया है। पहली अप्रैल 1999 से इस योजना का विलय *स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना* में कर दिया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम (डवाकरा) सितम्बर 1982 से समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की एक उप–योजना के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा के नीचे जीवन–यापन कर रही महिलाओं को स्वरोजगार के अवसर प्रदान कर उनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया। योजना के अन्तर्गत स्थानीय परिस्थितियों तथा अपनी पसंद और दक्षता के अनुरूप आर्थिक गतिविधियों को सम्पादित करने के लिए 10–15 महिलाओं को समूह में संगठित कर सामूहिक रूप से स्वरोजगार अपनाने हेतु प्रेरित किया गया। स्वरोजगार हेतु आवश्यक धनराशि की व्यवस्था सरकार द्वारा बैंकों के माध्यम से कराई गई। इस योजना के अन्तर्गत अब तक लगभग 1.5 लाख महिला समूहों का गठन करके लगभग 25 लाख महिलाओं को लाभान्वित किया गया है। पहली अप्रैल 1999 से इस योजना का भी *स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना* में विलय कर दिया गया है।

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना के नाम से पहली अप्रैल 1999 से सम्पूर्ण देश में लागू की गई स्वरोजगार प्रदान करने वाली

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के तहत दिहाड़ी रोजगार के साथ स्थायी परिसंपत्तियों का निर्माण

एक ऐसी नवीन, उपयोगी और अतिविशिष्ट प्रकार की अहम् योजना है जिसमें ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन–यापन करने वाले परिवारों को छोटे–छोटे उद्यमों और व्यवसायों के जरिए रोजगार प्रदान करते हुए उनके परिवारों की आमदनी बढ़ाने के पुनीत उद्देश्य से प्रारम्भ किया गया है। इस योजना के निर्माण में पूर्व से संचालित की जा रही छह ग्रामीण विकास योजनाओं – आई. आर.डी.पी., ट्राइसेम, डवाकरा, सिटरा, दस लाख कुओं की योजना तथा गंगा कल्याण योजना का इसमें विलय करके इनके सकारात्मक पहलुओं को शामिल करते हुए कई व्यावहारिक और नवीन व्यवस्थाओं को सम्मिलित किया गया है। इस नवीन योजना में जिन परिवारों को स्वरोजगार उपलब्ध कराया जाएगा उन्हें स्वरोजगारी, तथा इनके समूहों को स्वयं सहायता समूह तथा व्यक्तिगत स्वरोजगारी के बजाय समूहों के निर्माण पर बल देने की व्यवस्था की गई है। योजना में कार्यकलापों का निर्धारण प्रत्येक विकास खण्ड की विशेष परिस्थितियों, वहां उपलब्ध संसाधनों, वहां के लोगों के विशेष व्यावसायिक और व्यावहारिक कौशल तथा आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाएगा।

इस योजना को केन्द्र तथा राज्य सरकारों द्वारा 75:25 के अनुपात में धनराशि को व्यय करके चलाने की व्यवस्था की गई है। योजना के अन्तर्गत अगले पांच वर्षों में प्रत्येक विकास खंड के कम से कम 30 प्रतिशत परिवारों को सम्मिलित करने और उन्हें गरीबी की रेखा के ऊपर लाने का लक्ष्य निर्धारित किया गया है। योजना के अन्तर्गत ग्रामीण गरीबों के अति संवेदनशील समूहों पर विशेष रूप से ध्यान केन्द्रित किया जाएगा। इसके लिए स्वरोजगारियों में से न्यूनतम 50 प्रतिशत स्थान अनुसूचित जाति/जनजाति के, 40 प्रतिशत स्थान महिलाओं और तीन प्रतिशत स्थान विकलांगों को निर्धारित करने पर बल दिया गया है। योजना को एक 'ऋण–सह–अनुदान कार्यक्रम' के रूप में पंचायत समितियों के माध्यम से जिला ग्रामीण विकास अभिकरणों द्वारा क्रियान्वित करने की व्यवस्था निर्धारित की गई है।

योजनाओं के सफल न होने के कारण

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद देश के ग्रामीण क्षेत्रों में चलाई गई विभिन्न रोजगार–परक योजनाओं के उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि देश में ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी और गरीबी दूर करने के लिए सरकार द्वारा व्यापक और सघन प्रयास पांचवीं योजना के बाद से ही किए गए। यहां यह तथ्य भी विचारणीय है कि बेरोजगारी मूलतः गरीबी का मुख्य कारण है अथवा यह कहना भी अनुचित नहीं होगा कि गरीबी और बेरोजगारी एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। बेरोजगारी के कारण ही लोगों की अनिवार्य और मौलिक आवश्यकताएं भी पूरी नहीं हो पातीं। अतः गरीबी की रेखा के नीचे गुजर–बसर करने वाले लोगों को बेरोजगारी ने और अधिक असहाय, विवश और खोखला कर दिया है। इसी तथ्य को दृष्टिगत करने हुए छठी पंचवर्षीय योजना में सरकार द्वारा विशेष रूप से, ग्रामीण बेरोजगारी और गरीबी पर प्रत्यक्ष रूप से प्रहार करने वाली अनेक योजनाएं जैसे आई.आर.डी.पी., ट्राइसेम, जवाहर रोजगार योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना, डवाकरा आदि योजनाओं से देश के अधिक से अधिक ग्रामीण क्षेत्रों को लाभ पहुंचाने का प्रयास किया गया। इसके कुछ हद तक अच्छे परिणाम भी नजर आए हैं लेकिन वास्तविकता यह है कि सरकार द्वारा इस दिशा में किए गए प्रयासों, विभिन्न योजनाओं पर किए गए भारी–भरकम खर्चों, लोगों की आवश्यकताओं तथा योजनाकारों और सरकार की आकांक्षाओं और अपेक्षाओं के परिप्रेक्ष्य में इस दिशा में हुई प्रगति और उपलब्धियों को सन्तोषजनक नहीं कहा जा सकता। गरीबी और बेरोजगारी आज भी हमारे लिए अधिक गहन चिन्ता का विषय बनी हुई हैं। देश में गरीबी के सरकारी आंकड़े भी इस बात की पुष्टि करते हैं कि देश के एक तिहाई से भी अधिक लोग अभी भी पूर्ण रूप से गरीब हैं, जो हमारी बेरोजगारी निवारण की योजनाओं की विफलता के स्पष्ट सूचक हैं।

हमारे देश में गरीबी, बेरोजगारी जिस का मूल कारण है, किस सीमा तक फैली है यद्यपि इस बारे में विभिन्न विशेषज्ञों और सरकारों के विचारों में एकरूपता नहीं है लेकिन यह बात निश्चित है कि पिछले कुछ वर्षों में गरीबी के प्रतिशत में भले ही कमी दिखाई दी हो लेकिन देश में गरीबों की कुल संख्या में दिनोदिन बढ़ोतरी ही हो रही है। आजादी के बाद 1951–52 में योजना आयोग द्वारा देश में गरीबों की कुल जनसंख्या 19.87 करोड़ आंकी गई थी और देश में गरीबों का कुल जनसंख्या में प्रतिशत 52.66 बताया गया जबकि योजना आयोग के विशेषज्ञ दल की संशोधित सिफारिशों (1993–94) के अनुसार देश में 35.97 प्रतिशत जनसंख्या तथा कुल 32.04 करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे गुजर–बसर कर रहे हैं (तालिका–2) अर्थात गरीबी के प्रतिशत में आजादी के बाद से 16.69 प्रतिशत की कमी आई है लेकिन देश में गरीबों की कुल संख्या में इस अवधि में 12.17 करोड़ लोगों की वृद्धि हुई है और यह हम सभी के लिए चिन्ता का विषय ही नहीं बल्कि हमारी विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों तथा उन पर किए गए भारी–भरकम व्यय, योजनाओं के निर्माण और क्रियान्वयन में लगी मशीनरी आदि की दूरदर्शिता, भागीदारी, प्रतिबद्धता, जवाबदेही, ईमानदारी, नैतिकता, क्षमता, कार्यकुशलता आदि पर भी एक बड़ा–सा प्रश्न चिन्ह लगाने को विवश करती है।

देश में गरीबी और साथ ही बेरोजगारी पर नियन्त्रण पाने में असफल रहने के लिए अति महत्वपूर्ण कारणों में से एक प्रमुख निर्बाध गति से बढ़ती हुई हमारी जनसंख्या है जो देश में तेजी से हो रहे आर्थिक विकास को निरन्तर तथा निर्दयतापूर्वक दानव की भांति निगलती जा रही है। जनसंख्या में निरन्तर तेजी से हो रही वृद्धि के फलस्वरूप खाद्यान्न, वस्त्र, आवास, पेयजल, शिक्षा तथा स्वास्थ्य सुविधाओं आदि की मांग बढ़ने और पूर्ति यथा स्थिर रहने या कम अनुपात में बढ़ने के कारण गरीबी और बेरोजगारी में वृद्धि होना स्वाभाविक है। हालांकि ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या की वृद्धि यद्यपि देश की कुल जनसंख्या वृद्धि की तुलना में कुछ कम ही रही है लेकिन वहां कृषि जोतों के छोटे होते

तालिका – 2

विभिन्न राज्यों में गरीबों की संख्या (संशोधित 1993–94)

क्र. सं.	राज्य	कुल जनसंख्या (करोड़ में) (1991)	गरीबों की संख्या (करोड़ में)	गरीबी का प्रतिशत
1.	असम	2.24	.96	40.87
2.	अरूणाचल प्रदेश	.08	.04	39.35
3.	अण्डमान निकोबार	.02	.01	34.47
4.	बिहार	8.63	4.93	54.96
5.	आन्ध्र प्रदेश	6.65	1.53	22.19
6.	नगालैण्ड	.12	.05	37.92
7.	मणिपुर	.18	.06	33.78
8.	मिजोरम	.06	.01	25.66
9.	त्रिपुरा	.27	.11	39.01
10.	मेघालय	.17	.07	37.92
11.	सिक्किम	.04	.01	41.43
12.	जम्मू–काश्मीर	.77	.20	25.17
13.	हिमांचल प्रदेश	.51	.15	28.44
14.	पश्चिम बंगाल	6.80	2.54	35.66
15.	पाण्डिचेरी	.08	.03	37.40
16.	तमिलनाडु	5.58	2.02	35.03
17.	उड़ीसा	3.16	1.60	48.56
18.	मध्य प्रदेश	6.62	2.98	42.52
19.	पंजाब	2.02	.25	11.77
20.	चंडीगढ़	.06	0.008	11.35
21.	उत्तर प्रदेश	13.91	6.04	40.85
22.	दिल्ली	.94	.15	14.69
23.	दादरा एवं नगर हवेली	.01	0.008	50.84
24.	हरियाणा	1.64	.44	25.05
25.	राजस्थान	4.40	1.28	27.41
26.	गुजरात	4.13	1.05	24.21
27.	दमन एवं दीव	.01	0.002	15.80
28.	महाराष्ट्र	7.89	3.05	36.86
29.	गोवा	.12	.02	14.92
30.	कर्नाटक	4.49	1.56	33.16
31.	केरल	2.90	.76	25.43
32.	लक्षद्वीप	.05	0.001	25.04
	कुल भारत	84.63	32.04	35.97

जाने, भूमिहीन कृषकों के अनुपात में लगातार वृद्धि होने, आर्थिक उदारीकरण की नीति, शहरों में बड़े उद्योगों की स्थापना, मशीनीकरण के बढ़ते प्रयोग से लघु, कुटीर उद्योगों और ग्रामोद्योग की दयनीय स्थिति और उपेक्षा, और शिक्षा, तकनीकी ज्ञान तथा कौशल की कमी के कारण रोजगार के अवसरों में बढ़ोतरी सम्भव नहीं हो पा रही है। 1901 से 1921 तक देश के ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या की वृद्धि दर देश की कुल वृद्धि दर से कुछ अधिक रही है लेकिन 1921 से अब तक लगातार इसमें कमी आ रही है। 1981 से 1991 के मध्य यह कुल औसत दशकीय वृद्धि दर 23.85 की तुलना में 20.01 प्रतिशत था तथा 1991 और 2001 के मध्य 20.52 की तुलना में 15.24 प्रतिशत रहने की सम्भावना है। इसका प्रमुख कारण ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती बेरोजगारी और शहरों में उपलब्ध सुविधाओं की वजह से गांवों से बड़ी मात्रा में लोगों का शहरों की ओर पलायन करना रहा है। दूसरे शब्दों में ग्रामीण क्षेत्रों में चलाई गई सरकारी योजनाएं ग्रामीण लोगों को गांवों में पर्याप्त रोजगार उपलब्ध कराने मे अक्षम ही रही हैं।

सुझाव

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद से देश के ग्रामीण क्षेत्रों और वहां रहने वाले ग्रामीण बेरोजगारों और गरीबों को विशेष रूप से लाभान्वित करने और विकास की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए जो योजनाएं और कार्यक्रम संचालित किए गए हैं उससे वहां के जीवन–स्तर में निश्चित रूप से कुछ सुधार हुआ है। वहां मूलभूत सुविधाओं की उपलब्धता, रहन–सहन का स्तर तथा प्रति व्यक्ति आय में भी कुछ वृद्धि हुई है। लेकिन इतना सब होने के बाद इस दिशा में किए गए प्रयासों और व्यय की गई धनराशि के परिप्रेक्ष्य में अपेक्षित सफलता नहीं मिल पाई है। वहां संचालित किए गए कार्यक्रमों तथा योजनाओं के अनुपात में गुणात्मक और मात्रात्मक परिवर्तन का लक्ष्य अभी भी मीलों दूर है क्योंकि सामान्यतया सरकार द्वारा बेरोजगारी और साथ ही निर्धनता उन्मूलन के लिए जो नीतियां और कार्यक्रम अपनाए जाते रहे हैं वे प्रायः जल्दबाजी में

बिना पूरी तैयारी और प्रायोगिक तौर पर जांचे–परखे बगैर तथा जिन लोगों के लिए उन्हें तैयार किया जा रहा है बिना उनकी भागीदारी और सलाह के ही बनाए और लागू किए जाते हैं। देश में विभिन्न स्तरों पर व्याप्त भ्रष्टाचार, दलालों का विशाल जाल, पारदर्शिता का अभाव, लालफीताशाही, जातिवाद, सम्प्रदायवाद तथा भाई–भतीजावाद के चलते भी ये रोजगार सृजन के कार्यक्रम सफल नहीं हो पाते। सरकार की इस सम्बन्ध में बनाई गई नीतियों और कार्यक्रमों के प्रचार–प्रसार का अभाव, अशिक्षा, अज्ञानता, सामाजिक कुरीतियों तथा अन्ध–विश्वास भी काफी हद तक इस दिशा में बाधक रहे हैं।

इन कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए अनेक उपाय किए जाने की आवश्यकता है जिनमें प्रमुख इस प्रकार हैं :

- अतः सरकार द्वारा संचालित किए जा रहे इन कार्यक्रमों और योजनाओं की सफलता के लिए राजनैतिक और प्रशासनिक संकल्प, उत्तरदायित्व के औचित्यपूर्ण निर्धारण, त्रिस्तरीय पंचायतों को और अधिक वित्तीय और प्रशासनिक जिम्मेदारी सौंपने, जनसहभागिता सुनिश्चित करने, योजनाओं के समुचित प्रचार–प्रसार की व्यवस्था तथा प्राथमिक और प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार के लिए गांवों में विशेष अभियान चलाए जाने की आवश्यकता है। इसके साथ ऐसे उपाय भी किए जाने आवश्यक हैं जिनसे विशेष रूप से ग्रामीण गरीब लोगों में जागरूकता आए। जब तक नीचे से दबाव उत्पन्न नहीं होगा और गरीब लोग संगठित नहीं होंगे तब तक ये योजनाएं और कार्यक्रम वांछित परिणाम नहीं दे पाएंगे। अतः समुचित और उपयोगी शिक्षा की व्यवस्था के माध्यम से ग्रामीणों और गरीबों को शिक्षित, जागरूक, संगठित और स्वयं सहायता के योग्य बनाने हेतु सभी आवश्यक प्रबन्ध सुनिश्चित करने होंगे।
- बेरोजगारी उन्मूलन अथवा रोजगार सृजन की जो योजनाएं देश भर में चलाई जा रही हैं उनमें आपसी तालमेल का भी खासा अभाव रहा है। *जवाहर रोजगार योजना* और *सुनिश्चित रोजगार योजना* में आपसी तालमेल बहुत आवश्यक था लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसी प्रकार *समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम* और उसकी उप–योजनाओं तक में सम्बन्ध काफी कमजोर रहा है। *समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम* और *ट्राइसेम* तक आपस में नहीं जुड़ सके। इसी प्रकार की कमियां अन्य योजनाओं में भी देखी गई है जिसके कारण विभिन्न योजनाओं का अच्छा प्रभाव नहीं दिखाई दिया है। हालांकि अब *स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना* में सम्बन्धित योजनाओं को सम्मिलित कर इस तालमेल की कमी को दूर करने का प्रयास किया गया है लेकिन अभी भी बेरोजगारी दूर करने के लिए चलाई जा रही योजनाओं यथा – *स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना* और खादी तथा ग्रामोद्योग द्वारा चलाई जा रही स्वरोजगार और ग्रामोद्योग की योजनाओं तथा *जवाहर ग्राम समृद्धि योजना* और *सुनिश्चित रोजगार योजना* आदि में तालमेल बैठाने की आवश्यकता है तभी निर्धारित व्यक्तियों तक इन योजनाओं के लाभ पहुंच सकेंगे।
- किसी भी नए कार्यक्रम या योजना को तैयार करने से पूर्व सम्बन्धित लोगों से सम्पर्क करके उनकी आवश्यकताओं और अपेक्षाओं का उसमें पूरा ध्यान रखा जाना भी नितान्त आवश्यक है। इस हेतु नीतियों और कार्यक्रमों को बन्द और आलीशान भवनों में बैठक तथा जल्दबाजी में बनाने के स्थान पर क्षेत्र–विशेष में जाकर अथवा विस्तृत सर्वेक्षण कराकर ही इनका निर्धारण किया जाए। किसी भी योजना को बड़े क्षेत्र अथवा अधिक लोगों में लागू करने से पूर्व उसको छोटे स्तर पर प्रयोग के तौर पर लागू करके देखा जाए तथा अपेक्षित परिणाम उपलब्ध होने के बाद ही बड़े स्तर पर लागू करने के विषय में निर्णय लिया जाए इससे संसाधनों का समुचित उपयोग सम्भव हो सकेगा।
- ग्रामीण क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने तथा जरूरतमन्द लोगों को लाभप्रद रोजगार प्रदान करने के लिए खादी ग्रामोद्योग क्षेत्र का विस्तार किया जाना भी अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकता है। साथ ही गांवों में आधारभूत संसाधनों का विकास किया जाना भी बहुत आवश्यक है जिससे वहां छोटे–छोटे कुटीर ग्रामीण उद्योगों की स्थापना में सहूलियतें मिल सकेंगी। गांवों में लघु और कुटीर उद्योगों के साथ–साथ परम्परागत उद्योगों के विकास को विशेष प्रोत्साहन प्रदान किए जाने से इनके सफल होने की अधिक सम्भावनाएं रहेंगी। अतः गांवों में लागू की जा रही 'रोजगार तथा स्वरोजगार' की विभिन्न योजनाओं में बेरोजगारों को परम्परागत उद्योगों को अपनाने में प्राथमिकता तथा प्रोत्साहन दिया जाए तो अधिक उपयोगी होगा।
- देश में गौण तथा तृतीयक क्षेत्र का पर्याप्तरूपेण विस्तार होने के बाद भी ग्रामीण अर्थव्यवस्था का मूल आधार अभी भी कृषि ही है और कृषि क्षेत्र में विकास और रोजगार की अपार सम्भावनाएं हैं। अतः कृषि विकास हेतु कृषि में आधुनिकतम तकनीकी, यंत्र, उपकरण और विधियों का प्रयोग, कृषि आधारित उद्योगों का विकास तथा कृषि विविधीकरण के साथ–साथ पशुपालन, दुग्ध विकास, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, बकरी पालन तथा अन्य रोजगार परक ग्रामीण उद्योगों का विकास सुनिश्चित करने हेतु विशेष रणनीति बनाने की आवश्यकता है। गांवों में इन उद्योगों के विकास के लिए सस्ती दरों पर ऋण, तकनीकी सहायता, अनुदान, विपणन की व्यवस्था आदि को सुनिश्चित करना भी अनिवार्य है। इस प्रकार इन लघु और कुटीर उद्योगों के विकास से गांवों में अदृश्य बेरोजगारी भी दूर हो सकेगी। इसके अतिरिक्त वृक्षारोपण के सघन प्रयास द्वारा भी कृषिगत रोजगार में वृद्धि की जा सकती है। कृषि क्षेत्र में कार्यरत श्रमिकों हेतु न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का कड़ाई से अनुपालन सुनिश्चित करने की जरूरत है ताकि वे लोग शोषण से बचाए जा सकें।
- विभिन्न रोजगार योजनाओं के साथ विकास के अन्य क्षेत्रों में अपेक्षित सफलता तथा उपलब्धियां नहीं हो पाने का मूल कारण

(शेष पृष्ठ 72 पर)

ग्रामीण क्षेत्रों में टिकाऊ रोजगार की चुनौतियां

जितेन्द्र गुप्त*

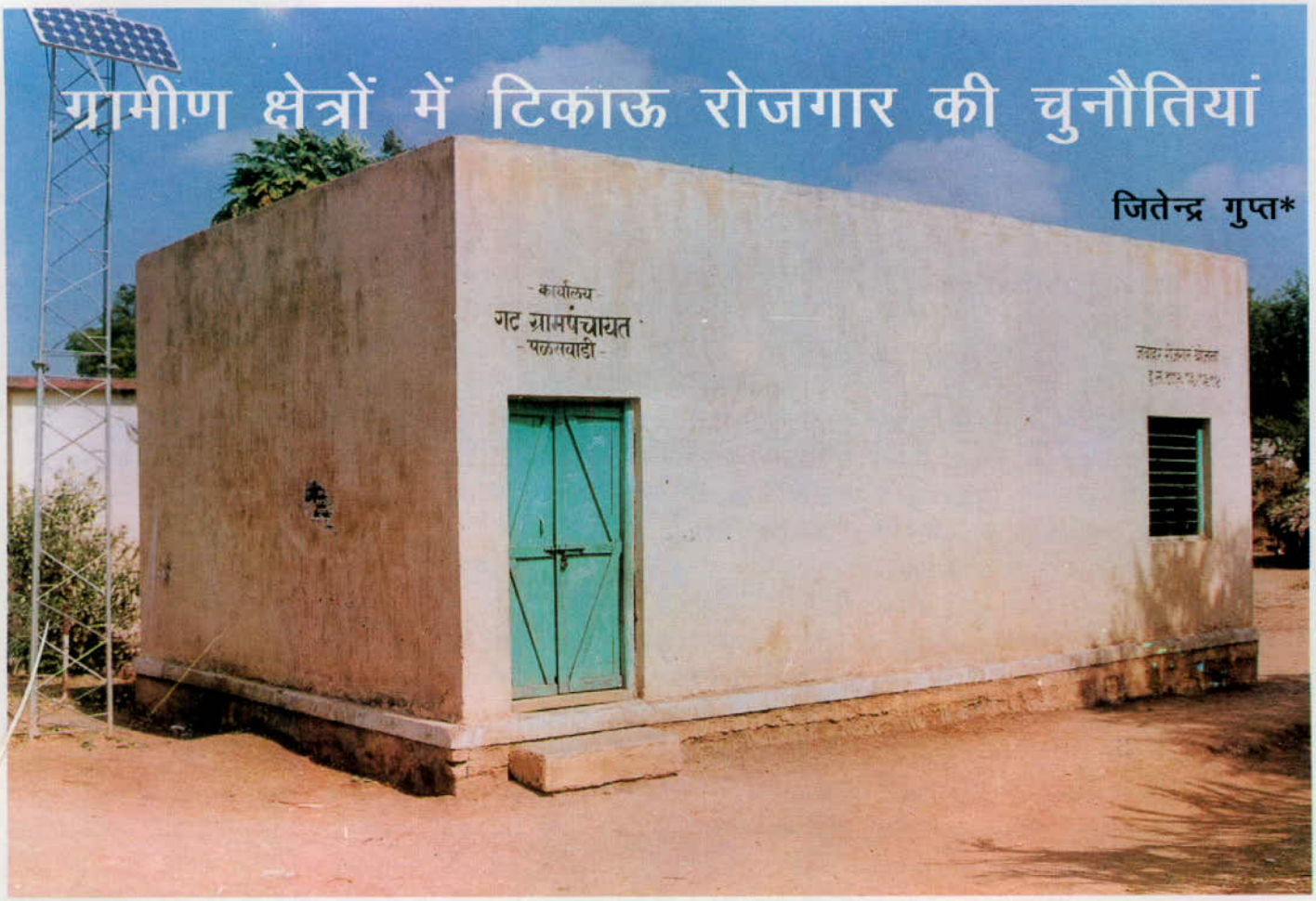

देश में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के जरिए बेरोजगारी दूर करने का जो रास्ता अपनाया गया उससे लोगों को तत्कालिक राहत भले ही मिली हो, लेकिन उनकी बुनियादी स्थिति ज्यों की त्यों रही और कर्ज तथा अनुदान पर निर्भर रहने का माहौल बना। यह मत व्यक्त करते हुए लेखक ने कहा है कि अगर कार्यक्रम प्रत्येक इलाके के साधनों, परम्पराओं और वहां मौजूद कौशल के आधार पर बनाए गए होते तो रोजगार सृजन के साथ देश की प्रगति के रूप में स्थायी परिसम्पत्तियों का निर्माण हुआ होता। लेखक का मानना है कि अब जो पुनर्गठित योजनाएं बनाई गई हैं इनकी सफलता पंचायतों और संबंधित अधिकारियों के बीच तालमेल पर निर्भर करेगी।

हर देश की आर्थिक नीति का लक्ष्य होता है, अपने नागरिकों की आर्थिक उन्नति, उनके रहन सहन के स्तर में सुधार और उनकी शारीरिक–मानसिक क्षमताओं का विकास। ऐसा होने पर ही वे राष्ट्र निर्माण में, आर्थिक–सामाजिक–राजनैतिक विकास में योग दे सकते हैं। हमारे योजनाबद्ध विकास का कमोबेश यही लक्ष्य रहा है।

नई शताब्दी की दहलीज पर खड़ा भारत आज अपनी परमाणु क्षमता, प्रक्षेपास्त्रों के विकास और प्रशिक्षित जनशक्ति सरीखीं क्षमताओं पर गर्व कर सकता है। एक से एक नई मोटरकारें, मोबाइल फोन और इंटरनेट की सुविधा उसे आधुनिक प्रगतिशील देश होने का आभास दे रही हैं। पिछले कई दशकों से अनाज के मामले में आत्मनिर्भर होने का संतोष भी है। अर्थव्यवस्था को बाजारोन्मुख बनाने और वैश्वीकरण के प्रयास भी हो रहे हैं जिससे कि दुनिया के नक्शे पर अपनी जगह बनाने का अवसर हम चूक न जाएं।

* वरिष्ठ पत्रकार

आर्थिक आधार पुख्ता नहीं

एक असलियत और है जिसे आधुनिक विकास के उन्माद में हम अक्सर दर गुजर कर जाते हैं। वह यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों का, विशेषकर उनमें रोजगार के अवसरों के अभाव का। ऐसा नहीं कि गांवों में विकास नहीं हुआ। जिन इलाकों में विशाल नदी परियोजनाओं का पानी पहुंचा है या अन्य साधनों से सिचाई की व्यवस्था हुई है वहां नए उन्नत बीजों और उर्वरकों ने हरित क्रांति को जन्म दिया है। ऐसे इलाके और राज्य गिने–चुने हैं। नकदी फसल उगाने वाले मझोले और बड़े किसानों की हालत सुधरी है तो उन परिवारों की भी जिनके सगे संबंधी विदेश से पैसा भेजते हैं। बड़े किसान, महाजन और

सन् 80 के दशक में गरीबी रेखा से नीचे की आबादी में दस प्रतिशत की कमी आई थी – हर साल एक प्रतिशत की दर से। लेकिन 1990–91 और 1996–97 के बीच सकल राष्ट्रीय उत्पाद में 5.6 प्रतिशत विकास दर के बावजूद गरीबी एक प्रतिशत सालाना के हिसाब से बढ़ी है।

व्यवसायी भी शहरों जैसी सुविधाओं के हकदार बन गए हैं। लेकिन आज भी कम से कम एक–तिहाई आबादी ऐसी है जो गरीबी रेखा के नीचे गुजर–बसर करती है। हमारा आर्थिक आधार इतना पुख्ता नहीं हुआ है कि वह मामूली झटके भी झेल सके। बाढ़, सूखा और सार्वजनिक निवेश में कमी गरीबी और विपन्नता का फैलाव बढ़ा देती है।

उदारीकरण का प्रतिकूल प्रभाव

योजना आयोग के सदस्य एस.पी.गुप्ता के ताजा अध्ययन से ज्ञात होता है कि उदारीकरण की नई आर्थिक नीति का गरीबों पर प्रतिकूल असर हुआ है। उन्होंने हिसाब लगाकर बताया है कि सन् 80 के दशक में गरीबी रेखा से नीचे की आबादी में दस प्रतिशत की कमी आई थी – हर साल एक प्रतिशत की दर से। लेकिन 1990–91 और 1996–97 के बीच सकल राष्ट्रीय उत्पाद में 5.6 प्रतिशत विकास दर के बावजूद गरीबी एक प्रतिशत सालाना के हिसाब से बढ़ी है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 54वें दौर में जनवरी–जून 1998 के दौरान संकलित आंकड़ों के अनुसार गांवों में एक व्यक्ति का घरेलू औसत खर्च 382 रुपये प्रति मास है। यह ग्रामीण क्षेत्रों का सार्वदेशिक औसत है। अपेक्षया संपन्न ग्रामीण इससे कहीं अधिक खर्च करता हो तो गरीब और नियमित रोजगार के अवसर से वंचित कितना खर्च कर पाता होगा यह कहना कठिन है। शहरी गृहस्थ का प्रति व्यक्ति मासिक व्यय 1.8 गुना अधिक, यानी 684 रुपये है। यों शहरों में भी काफी लोग ऐसे हैं जो गरीबी रेखा से नीचे हैं। लेकिन ये मुख्यतः रोजगार की तलाश में गांव छोड़ कर आए हुए लोग हैं।

भारत हमेशा से विरोधाभास का देश रहा है। राजा और रंक की जोड़ी कभी नहीं टूटी। एक ओर भौतिकवाद फलता–फूलता रहा है तो आध्यात्मिकता और समन्वयवादी दृष्टिकोण के लिए यह देश प्रसिद्ध रहा है। आज का भौतिकवाद बिल्कुल दूसरी किस्म का है। इसमें नैतिकता और समन्वय की गुंजाइश बहुत कम है। आधुनिक औद्योगिक सभ्यता का जन्म जिन परिस्थितियों में हुआ और श्रम–बचाऊ तकनीक के माध्यम से जिस तरह वह आगे बढ़ रही है उसका कृषि सभ्यता युगीन ग्रामीण जीवन या रहन–सहन से बैर है। बैर न भी हो तो वह उसकी समर्थक हरगिज नहीं है।

गरीबी उन्मूलन की योजना

भारत के गांवों में बेरोजगारी और पिछड़ेपन का हमारे औद्योगीकरण से गहरा संबंध है, हालांकि अन्य कारण और परिस्थितियां भी गांवों के ताने–बाने को तहस–नहस करने में सहायक रही हैं। तिरेपन वर्ष पूर्व भारत को

सन् 70 के आसपास शिद्दत से महसूस किया जाने लगा कि विकास की गंगा गांवों को नहीं सींच पा रही है। उसके फायदे मिले भी हैं तो ताकतवर वर्गों को। आर्थिक विषमता बढ़ रही है और गरीब, साधनहीन मतदाता खुशहाली की प्रतीक्षा करते करते थक गए हैं।

स्वाधीनता के साथ लुंजपुंज व्यवस्था को संवारने–सुधारने की जिम्मेदारी भी विरासत में मिली थी। इसके लिए योजनाबद्ध विकास का रास्ता अपनाया गया। पहली पंचवर्षीय योजना में खेती को प्रमुखता अवश्य मिली, मगर दूसरी पंचवर्षीय योजना से सार्वजनिक क्षेत्र को औद्योगीकरण और बुनियादी ढांचे की आधारशिला रखने का दायित्व सौंपा गया। इनके लिए आवश्यक पूंजी और टेक्नोलाजी जुटाई गई। विकास–दर बढ़ाने के लिए हर क्षेत्र में उत्पादन वृद्धि पर बल दिया जाने लगा जिनके पास उत्पादन के साधन नहीं थे वे उपेक्षित रह गए।

सन् 70 के आस–पास शिद्दत से महसूस किया जाने लगा कि विकास की गंगा गांवों को नहीं सींच पा रही है। उसके फायदे मिले भी हैं तो ताकतवर वर्गों को। आर्थिक विषमता बढ़ रही है और गरीब, साधनहीन मतदाता खुशहाली की प्रतीक्षा करते–करते थक गए हैं। अतः 'गरीबी हटाओ' का नारा प्रतिध्वनित हुआ और जरूरतमंदों को रोजगार के कुछ अवसर प्रदान करने की योजनाएं अस्तित्व में आने लगीं। जैसे महाराष्ट्र रोजगार गारंटी योजना, काम के बदले अनाज कार्यक्रम, जिसे बाद में राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम का रूप मिल गया। 1980 में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम शुरू हुआ जिसमें बेहद गरीब परिवारों को निजी रोजगार शुरू करने के लिए ऋण और अनुदान देने की व्यवस्था की गई। बाद में उसकी पूरक और सहायक योजनाएं भी बनीं। 1989 में जवाहर रोजगार योजना का शुभारंभ हुआ। पिछले अप्रैल से रोजगार सृजन और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को पुनर्गठित करने और उनके कार्यान्वयन में पंचायतों की भागीदारी बढ़ाने की व्यवस्था की गई ताकि वे अधिक कारगर और प्रभावी साबित हो सकें।

रोजगार सृजन के दो रूप

ग्रामीण विकास और रोजगार सृजन के दो स्वरूप होते हैं। एक वह है जो उपरोक्त कार्यक्रमों के माध्यम से अपनाया गया। इसके परिणाम बहुत संतोषजनक नहीं रहे। दूसरा वह जो अपनाया जाना चाहिए था, लेकिन आधुनिक प्रौद्योगिकी पर आधारित औद्योगीकरण को प्राथमिकता दिए जाने के कारण नहीं अपनाया जा सका। अगर शुरू में ही समग्र

कार्यान्वयन की खामियों को भूल जाएं तो भी एक मुख्य बात यह थी कि वे सब तात्कालिक राहत पहुंचाने वाले कार्यक्रम थे। साल में सौ दिन काम दिला कर गरीब को थोड़ा सहारा दे दिया गया, लेकिन उसकी बुनियादी स्थिति जैसे की तैसी बनी रही।

ग्रामीण विकास की योजना बनाई जाती तो भौगोलिक और पर्यावरण एकरूपता पर आधारित इलाकों के साधनों, ऐतिहासिक परंपरा, सांस्कृतिक और कौशलगत प्रवीणता के आधार पर इलाकों को बांटा जाता। स्थानीय प्रादेशिक और राष्ट्रीय आवश्यकताओं और परिस्थितियों को समन्वित करके ऐसी योजनाएं और कार्यक्रमों का निरूपण किया जा सकता था जो रोजगार और उन्नति की स्थायी व्यवस्था को जन्म देते। सुधरी हुई नई उपयुक्त तकनीक का इस्तेमाल होता और जीवंत ग्रामीण अर्थव्यवस्था की नींव पड़ती। इसके लिए जितने

इन योजनाओं से कुछ हानि भी हुई है। सरकारी कार्यक्रमों पर, कर्ज और अनुदान पर निर्भरता का माहौल बना है, स्वावलंबन का नहीं।

साधनों की आवश्यकता थी या तो वे उपलब्ध नहीं थे – औद्योगीकरण और आधुनिकीकरण में खर्च हो रहे थे, या फिर योजनाकारों का इस ओर ध्यान ही नहीं गया। वांछित सफलता न मिलने के कारण ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन की योजनाओं के वांछित परिणाम नहीं निकले तो कई बुनियादी कारण थे। कार्यान्वयन की खामियों को भूल जाएं तो भी एक मुख्य बात यह थी कि ये सब तात्कालिक राहत पहुंचाने वाले कार्यक्रम थे। साल में सौ दिन काम दिला कर गरीब को थोड़ा सहारा दे दिया गया, लेकिन उसकी बुनियादी स्थिति जैसे की तैसी बनी रही। स्वरोजगार योजनाओं से बहुतों को गरीबी रेखा के ऊपर आने का भले ही अवसर मिल गया हो पर इनकी सामाजिक–आर्थिक स्थिति में विशेष अंतर नहीं आ सका। गरीब और भूमिहीन आबादी में अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत सबसे अधिक है।

इन योजनाओं से कुछ हानि भी हुई है। सरकारी कार्यक्रमों पर, कर्ज और अनुदान पर, निर्भरता का माहौल बना है, स्वावलंबन का नहीं। जातिगत या वर्गगत विभाजन की दरार सिकुड़ने की बजाय चौड़ी हुई है। समर्थ और असमर्थ वर्गों में साझेदारी और परस्पर निर्भरता का भाव नहीं पैदा हुआ। पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्राप्त हो जाने के बावजूद वे अपंग और सरकारी तंत्र पर पूरी तरह निर्भर हैं क्योंकि न तो उन्हें पर्याप्त वित्तीय अधिकार मिले हैं और न उनमें सामूहिक हित के प्रति विशेष आस्था पैदा हो सकी है।

पुनर्गठित कार्यक्रम

अप्रैल 1999 में पुनर्गठित योजनाओं में दो प्रमुख हैं। जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के अधीन पंचायतों को जिला ग्रामीण विकास अधिकरण जिला परिषद की मार्फत धनराशि मिलेगी। पंचायतें स्थानीय आवश्यकता के अनुसार सड़क, स्कूल की इमारत बनवा सकेंगी तथा अन्य निर्माण–कार्य करवा सकेंगी। माल और मजदूरी के निर्धारित प्रतिशत को भी लचीला बना दिया गया है।

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना में छह कार्यक्रमों को शामिल किया गया है। वे हैं : समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण (ट्राइसेम), ग्रामीण महिला और बाल विकास कार्यक्रम (डवाकरा), हस्तकारों को उन्नत औजार देने की योजना (सिटरा), गंगा कल्याण योजना और दस लाख कुओं की योजना। इस समन्वित योजना का उद्देश्य है कि तीन वर्ष के अंदर हर स्वरोजगारी परिवार गरीबी रेखा से ऊपर आ जाएं। अगले पांच वर्ष में हर खंड के 30 प्रतिशत बेरोजगारों को इस योजना में शामिल करने का लक्ष्य है।

पुनर्गठित योजनाओं की सफलता का सारा दारोमदार पंचायतों तथा संबंधित विभागों के अधिकारियों के बीच तालमेल और परस्पर सहयोग पर निर्भर करेगा।

इस योजना में व्यक्ति नहीं, व्यक्तियों के समूहों को प्राथमिकता दी जाएगी। इस कार्यक्रम में भी पंचायतों को केंद्र में रख गया है।

पुनर्गठित योजनाओं की सफलता का सारा दारोमदार पंचायतों, तथा संबंधित विभागों के अधिकारियों के बीच तालमेल और परस्पर सहयोग पर निर्भर करेगा।

विभिन्न कार्यक्रमों के पुनर्गठन और समन्वय के माध्यम से उनसे रोजगार सृजन को

जैसे भी हो रोजगार के अवसर बढ़ाने का बंदोबस्त करना ही होगा। यह सामाजिक, राजनैतिक और व्यावसायिक दृष्टि से भी आवश्यक है। व्यावसायिक दृष्टि से इसलिए कि आज के गरीब और वंचित कल तैयार माल खरीदने वाले उपभोक्ता बन सकते हैं।

स्थायित्व प्रदान करने की कोशिश की गई है। लेकिन इतना यथेष्ट साबित नहीं होगा। कोशिश की जानी चाहिए कि स्वरोजगारी समूहों को ऐसी टेक्नोलाजी मिले जो सरल और अधिक उत्पादक हो क्योंकि परंपरागत उद्योग उसी रूप में अधिक समय तक टिक नहीं पाएंगे। नए डिजाइनों और बदलती हुई रुचियों का अनुसरण भी जरूरी है।

पंचायतों को मजबूत बनाना जरूरी

ग्रामोद्योग और कुटीर उद्योगों के संवर्धन के लिए अनेक संगठन, विभाग और संस्थाएं हैं जैसे लघु उद्योग तथा कृषि और ग्रामीण उद्योग, खादी और ग्रामोद्योग आयोग, कपार्ट आदि। वित्त पोषण के लिए सिडबी और नाबार्ड हैं। ग्रामीण बैंकों और सहकारिता विभाग की गांवों में पैठ है। अनेक गैर सरकारी संगठन भी हैं। निर्दिष्ट कार्यों और गतिविधियों में इनका सहयोग प्राप्त करने की व्यवस्था की जानी चाहिए जिससे कि उनकी क्षमताओं और साधनों का गांवों को, गरीबों को अधिक से अधिक लाभ मिले। कोई न कोई ऐसा रास्ता निकालना होगा कि पंचायतें मजबूत हों, उनकी सामर्थ्य और क्षमता बढ़े। स्थानीय नेतृत्व विकसित हो जिसके प्रति अन्य संगठन अपनी जवाबदेही समझें। अंततः यही करना पड़ेगा क्योंकि बड़े उद्योग और खेती दोनों की रोजगार सृजन क्षमता सीमित है। जैसे भी हो रोजगार के अवसर बढ़ाने का बंदोबस्त करना ही होगा। यह सामाजिक, राजनैतिक और व्यावसायिक दृष्टि से भी आवश्यक है। व्यावसायिक दृष्टि से इसलिए कि आज के गरीब और वंचित कल तैयार माल खरीदने वाले उपभोक्ता बन सकते हैं। ❑

Have a warm shower
Using free energy from the sun

USE SOLAR WATER HEATERS

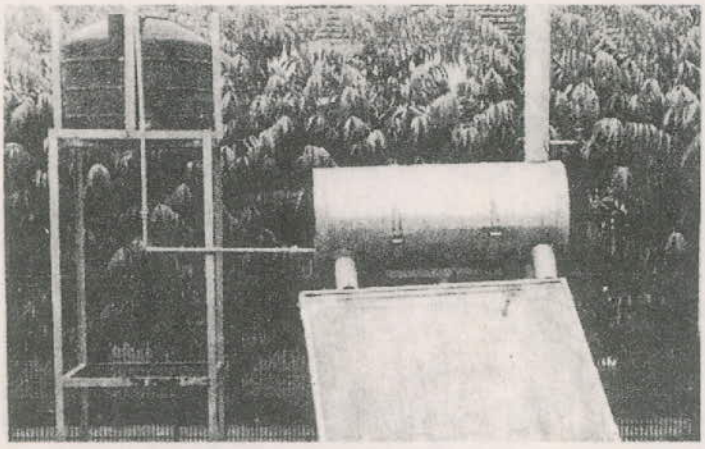

You save energy, pay a reduced electricity bill and help to keep the environment clean. Solar Water Heaters with ISI marked collectors are available from the following manufacturers:

Andhra Pradesh: Hyderabad: Suryodaya Hi-Tech Engineering Pvt. Ltd. (040-7767587)• **Chandigarh**: Amit Renewable Waste Technologies Ltd. (0172-610900), Aditya Energy Incorporated Pvt. Ltd. (0172-563755), Surya Shakti (0172-653299), Inter Solar Systems (P) Ltd., (0172-655349, 579002)• **Delhi:** Bharat Heavy Electricals Ltd. (011-3318433), Solchrome Systems India Limited (011-6838365)• **Gujarat: Baroda**: Ankur Scientific Energy Technologies Pvt. Ltd. (0265-793098) Solar Energy Services (0265-337674), Vadodara: NRG Technologies (0265-642094)• **Karnataka: Bangalore**: Balaji Enterprises (080-3328533), Dheemanth Industries (080-3359377), Divya Industries (080-8398471), Emvee Solar Systems (080-3332060), Enolar Systems (080-3355333), Enolar Systems Marketing (080-3388792), Hot-Hold Systems (080-3301000), Kotak Urja Pvt. Ltd. (080-8362136), Nuetech Systems (080-3483766), Peenya Alloys (080-8394259), Sabha Solar Energy (080-3340245), Surya Shakti (080-3380670), Swamy Solar Systems (080-5545131),Tata BP Solar India Ltd. (080-8520082), Technomax Solar Devices • (080-3418723), **Mangalore:** Prabhu Energy Systems (0824-491967)• **Kerala: Edayar:** Suryakiran Pvt. Ltd. (0484-559184) **Kochi**: Kraft Works Furnaces & Control Devices (0484-542337)• **Maharashtra: Aurangabad:** Sudarshan Saur Shakti Pvt. Ltd. (02432-333491) **Jalgaon:** Jain Irrigation Systems Ltd. (0257-220033) **Miraj**: Jay Industries (0233-444464)• **Pune:** Bipin Engineering Pvt. Ltd. (020-802064), Kaushal Solar Equipments (P) Ltd (020-376379), Machinocraft (020-542675), M. Laxman & Co. (020-338201), Ravi Precisions (P) Ltd. (020-680792), Savemax Solar Systems Pvt. Ltd. (020-538613), Solar Product Co. (020-464182), Standards Engineering Co. (020-670237)• **Punjab:** Surya Jyoti Devices (India) Pvt. Ltd. (01888-32039)• **Tamilnadu: Chennai:** Solker Industries Pvt. Ltd. (044-8274142) **Tirunelveli:** Suntrap Devices (0462-577693)• **West Bengal: Calcutta:** Sigma Steel & Engineers (P) Ltd. (033-3515942)

Issued by Ministry of Non-Conventional Energy Sources

davp 99/729

सन् 2000–2001 का बजट सख्त पर ग्रामीण कार्यक्रमों की बहार

वेद प्रकाश अरोड़ा*

बजट में ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत करने के अनेक प्रावधान किए गए हैं। प्रधानमंत्री की ग्रामोदय योजना के तहत 5,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है जिसमें से 2,500 करोड़ रुपये की राशि ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कें बनाने पर खर्च की जाएगी। ग्रामीण क्षेत्रों में 25 लाख मकान बनाने का लक्ष्य रखा गया है। बारह लाख मकान इन्दिरा आवास योजना के तहत गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए बनाए जाएंगे। 75 लाख किसानों को इस वर्ष क्रेडिट कार्ड जारी किए जाएंगे। बजट में भूमि के उपयोग के उपाय सुझाने तथा कृषि विकास और पर्यावरण की रक्षा के लिए एक आयोग बनाने का भी प्रस्ताव है।

अगर 2000–2001 का बजट नई सरकार का, नए वर्ष का, नई शताब्दी और नई सहस्राब्दी का तथा रक्षा खर्च में रिकार्ड वृद्धि का पहला बजट है, तो यह गांवों, गांव वालों तथा गरीबी की रेखा के नीचे जिंदगी बसर करने वालों की सुध लेने वाला भी पहला बजट है। निस्संदेह पिछला वर्ष बहुत–सी चुनौतियों और कुछ विकट परिस्थितियों का वर्ष रहा। कश्मीर के कारगिल क्षेत्र में युद्ध होने, उड़ीसा में वृहद विनाशकारी तूफान आने, दो वर्षों में तीसरे आम चुनाव पर 10 अरब खर्च होने, चुनाव से पहले विकास की कीमत पर राजनैतिक अस्थिरता का भयंकर दौर चलने, मानसून के कमजोर रहने, विश्व में तेल मूल्यों के तिगुना हो जाने, दक्षिण–एशिया के साथ–साथ विश्व के अनेक देशों की अर्थव्यवस्था के लड़खड़ाते हुए चलने, जैसी अंदरूनी और बाहरी चुनौतियों की छाया इस बजट पर पड़ना और इसका कुछ कठोर होना स्वाभाविक था। आर्थिक संकट के गहराते बादलों के कारण उत्पादन लागत या आयात मूल्य से कम दाम पर चीजें बेचना सरकार के लिए भारी सिरदर्द बनता जा रहा था। खज़ाना खाली होते जाने से विकास–परियोजनाएं परवान चढ़ाना टेढ़ी खीर बनता जा रहा था। इन प्रतिकूल परिस्थितियों में कुछ चीजों के मूल्य बढ़ाने से आम आदमी के कष्ट बढ़ गए हैं। जहां तक किसानों का संबंध है, जब भू–राजस्व लेना बंद कर दिया गया हो, कई क्षेत्रों में उन्हें मुफ्त बिजली और मुफ्त पानी दिया जा रहा हो, उर्वरकों पर सब्सिडी दी जा रही हो, प्रत्येक वर्ष उनकी फसल के दाम बढ़ा दिए जाते रहे हों और कृषि पर कभी कोई कर न लगाया गया हो, तो एकाध मद में उनसे त्याग करने को क्यों नहीं कहा जा सकता, और वह भी तब जब राष्ट्रीय आय की तुलना में करों का अनुपात कम होता जा रहा हो? इस सब के बावजूद बजट में ग्रामीण जनता की पूरी सुध लेकर कई ठोस जन–कल्याणकारी और क्रांतिकारी कदम उठाए गए हैं। *प्रधानमंत्री की ग्रामोदय योजना,* घुप अंधकार में डूबे जीवन बसर करने वाले गरीबों के लिए *जन श्री बीमा योजना,* जन–जन को लिखना पढ़ना सिखाने का *सर्व–शिक्षा अभियान,* बिना छत छप्पर के बदहाल जिंदगी जीने वाले लोगों के लिए व्यापक आवास–योजना, और भूमि के प्रभावी उपयोग के लिए राष्ट्रीय आयोग के गठन जैसी योजनाओं और कार्यक्रमों की महक इस बजट में है। महिला अधिकारिता के प्रश्न का समाधान करते समय ग्रामीण महिलाओं की स्थिति की अनदेखी नहीं की जा सकती। इस लिहाज से महिला अधिकारिता कार्यदल का गठन भी ग्रामीण जगत के लिए बहुत महत्व रखता है। साथ ही फार्म हाऊसों पर कृषि इतर कार्यों के लिए कर लगाने के प्रस्ताव, भूमि के उपयोग के लिए आयोग का गठन और 28 कृषि स्कीमों का प्रस्तावित एकीकरण भी इस बजट की कुछ अन्य विशेषताएं कही जा सकती हैं।

* स्वतंत्र पत्रकार

पांच तत्व

वर्तमान सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध है कि आर्थिक सुधारों का लाभ समाज के सभी वर्गों को, विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वालों और उनसे भी बढ़कर अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों को मिले। सामाजिक और आर्थिक बुनियादी ढांचे के पांच तत्व स्वास्थ्य, शिक्षा, पेयजल पानी, मकान और सड़कें – विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रों में जीवन की बेहतरी के लिए महत्वपूर्ण हैं। स्वाधीनता–प्राप्ति के 52 वर्षों के बाद भी ग्रामीण क्षेत्रों में मूलभूत–सेवाओं की स्थिति अत्यंत असंतोषजनक है। हमारे 42 प्रतिशत गांवों में सही ढंग की सड़कें नहीं हैं, एक लाख 80 हजार गांवों में एक किलोमीटर के घेरे में प्राथमिक स्कूल नहीं है, साढ़े चार लाख गांवों में पीने के पानी की समस्या मुंह बाए खड़ी है। कुछ अनुमानों के अनुसार एक करोड़ 40 लाख रिहायशी इकाइयों की कमी है। ग्रामीण स्वास्थ्य के मूलभूत ढांचे में बहुत कमियां हैं। देहाती इलाकों में बुनियादी सेवाओं में ये खामियां बहुत खटकती हैं। वर्तमान सरकार इन्हें तेजी से दूर करने के लिए प्रयत्नशील है।

प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना

विकास के प्रयत्नों में अधिक गति लाने के लिए तथा ग्रामीण जनता को महत्वूपर्ण आवश्यकताओं को समयबद्ध कार्यक्रम द्वारा पूरा करने के लिए *प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना* के नाम से एक नई योजना शुरू करने की घोषणा की गई है। बजट में इसके लिए अलग से 5,000 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। इस राशि में से 2,500 करोड़ रुपये से देहाती इलाकों में सड़कें बनाने और गावों को एक दूसरे से जोड़ने के काम में सुधार लाने का राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम आरंभ किया जाएगा।

प्राथमिक शिक्षा

सभी को प्राथमिक शिक्षा देने का उद्देश्य नई सरकार के मुख्य कार्यों में शामिल है। इस पर नए सिरे से जोर देने और और ध्यान केंद्रित करने के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन प्राथमिक शिक्षा और साक्षरता का नया विभाग पहले ही बनाया जा चुका है। कुछ नए प्रयासों में सभी को प्राथमिक शिक्षा देने के लिए *सर्व शिक्षा अभियान* नाम की नई योजना आरम्भ की गई है। इसके अंतर्गत सन् 2003 तक सभी बच्चों को स्कूलों में दाखिल किए जाने का लक्ष्य है और जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम का विस्तार कर उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और गुजरात के बाकी ज़िले उसके दायरे में लाए जा सकेंगे। इन सब कामों के लिए प्राथमिक शिक्षा के लिए योजना–राशि 2,931 करोड़ रुपये से बढ़ा कर अगले वर्ष 3,729 करोड़ रुपये कर दी गई है।

पेयजल सुविधाएं

अगले वर्ष लगभग 60 हजार ग्रामीण बस्तियों और 30 हजार स्कूलों में पीने के पानी की सुविधा प्रदान करने का प्रस्ताव है। उद्देश्य यह है कि अगले पांच वर्षों में सभी ग्रामीण बस्तियों में पीने के पानी की व्यवस्था हो जाए। ग्रामीण विकास मंत्रालय में पेय जल आपूर्ति नाम का नया विभाग इस काम को तेजी से आगे बढ़ाने के लिए स्थापित किया गया है। इस विभाग की व्यय राशि इस वर्ष 1,807 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 2,100 करोड़ रुपये की जा रही है।

स्वास्थ्य

प्रजनन और शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम के लिए इस वर्ष के 695 करोड़ रुपये के आवंटन की तुलना में 1,051 करोड़ रुपये का व्यय निर्धारित किया गया है। देहती इलाकों में आवास–स्कीमों के लिए 1,710 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। *प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना* के अंतर्गत विभिन्न मदों की विशिष्ट परियोजनाएं लागू करने के लिए राज्यों को केंद्रीय सहायता दी जाएगी। केंद्रीय सरकार के सम्बद्ध मंत्रालय इन कार्यक्रमों के लिए दिशा–निर्देश देंगे और उनके क्रियान्वयन पर निगरानी रखेंगे। पूर्व बुनियादी न्यूनतम सेवा–स्कीम को नई स्कीम से मिला दिया जाएगा। इस तरह ग्रामीण जनता की पांच बुनियादी जरूरतों की स्कीमों के लिए बजट में 13,000 करोड़ से कुछ अधिक राशि का प्रावधान किया गया है।

ग्रामीण आवास

ग्रामीण आवास का विस्तार से उल्लेख करते हुए सरकार के एजंडे में सभी के लिए आवास को प्राथमिकता वाला क्षेत्र निर्धारित

किया गया है। अगले वित्त वर्ष के लिए देहाती इलाकों में 25 लाख रिहायशी इकाइयां बनाने का लक्ष्य रखा गया है। एजेंडे में समाज के विभिन्न वर्गों की जरूरतें पूरी करने को निम्नलिखित स्कीमें भी तैयार की गई हैं:

- इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत गरीबी की रेखा के नीचे के लोगों के लिए 12 लाख मकानों की व्यवस्था करने का प्रस्ताव है। इस काम के लिए बजट में 1,501 करोड़ रुपये का प्रावधान किया जा रहा है।
- 32,000 रुपये से कम वार्षिक आय वाले परिवारों के लिए ऋण और सब्सिडी स्कीम के तहत एक लाख मकान बनाने के लिए सहायता दी जाएगी। इस स्कीम के लिए बजट में 92 करोड़ रुपये का प्रावधान किया जा रहा है।
- स्वर्ण जयंती ग्रामीण आवास वित्त योजना के अंतर्गत राष्ट्रीय आवास बैंक डेढ़ लाख मकान बनाने के लिए बैंकों और आवास वित्त कंपनियों को पुनर्वित्त प्रदान करेगा।

बजट में ग्रामीण क्षेत्रों में आवास निर्माण के लिए विशेष व्यवस्था की गई है

ग्रामीण इलाकों में आवास वित्त की उपलब्धता में सुधार के लिए सरकार ने नौवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान हुडको को 350 करोड़ रुपये की इक्विटी राशि देने का फैसला किया है। इसमें से 200 करोड़ रुपये तो पहले ही जारी किए जा चुके हैं और 100 करोड़ रुपये की और राशि अगले वर्ष जारी करने का प्रस्ताव है। इस बढ़े हुए इक्विटी समर्थन से, और अधिक धन जुटा कर अगले वित्त वर्ष ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 9 लाख मकान बनाने के लिए वित्तीय सहायता दे सकेगा।

सहकारी संस्थाएं और स्वंयसेवी संगठन डेढ़ लाख मकान बनाने में मदद करेंगे।

भूमि आयोग

देश में भूमि उपयोग के स्वरूप, विभिन्न क्षेत्रों में मौसम की स्थिति के संदर्भ में कृषि के विकास और वन संपदा संसाधनों की रक्षा के लिए राष्ट्रीय और राज्य स्तरों पर दीर्घकालीन नीति की समीक्षा और समन्वय की तत्काल आवश्यकता है। साथ ही वन संपदा के संरक्षण और विकास, बंजर भूमि के अधिकतम उपयोग, जलसंभर विकास और जैव–विविधता जैसे कई संबंधित विषयों पर समेकित दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत है। मुद्दों की जटिलताओं को देखते हुए भूमि–उपयोग नीति के लिए एक राष्ट्रीय आयोग बनाया जाएगा। इसमें विभिन्न क्षेत्रों के विशेषज्ञ होंगे। यह आयोग विभिन्न पहलुओं की जांच करेगा और सरकार से समुचित सिफारिशें करेगा।

कृषि ऋण

गरीबी दूर करने, रोजगार जुटाने, खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करने और उद्योगों तथा सेवाओं के लिए मजबूत घरेलू बाजार को बनाए रखने के लिए कृषि का निरंतर और व्यापक आधार पर विकास जरूरी है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास और मजबूती के लिए कृषि मूलाधार का काम करती है। नए वित्त वर्ष में कृषि क्षेत्र के लिए ऋण प्रवाह में 20 प्रतिशत की वृद्धि होने की आशा है। वित्त वर्ष 1999–2000 में वाणिज्यिक बैंकों, सहकारी बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की मार्फत लगभग 41,800 करोड़ रुपये का कर्ज कृषि क्षेत्र को उपलब्ध होने का अनुमान है। अगले वर्ष अर्थात् 2000–2001 के दौरान यह बढ़कर 51,500 करोड़ हो जाने की आशा है। पिछले दो वर्षों में ग्रामीण ऋण प्रवाह को बढ़ावा देने के कई उपाय किए गए। इस बजट में न केवल पिछले कार्यक्रमों को सुदृढ़ किया जाएगा, बल्कि कुछ नए उपाय भी किए जाएंगे। पिछले वर्ष ग्रामीण बुनियादी ढांचा विकास कोष–5 के लिए बैंक क्षेत्र से बढ़े हुए 3,500 करोड़ रुपये के आवंटन की घोषणा की गई थी और कर्जों के भुगतान की अवधि बढ़ाकर सात वर्ष कर दी गई थी। तब ग्रामीण बुनियादी ढांचा विकास कोष का दायरा भी बढ़ा दिया गया था, ताकि ग्राम–स्तरीय बुनियादी ढांचा परियोजनाएं लागू करने के लिए ग्राम–पंचायतों, स्व–सहायता समूहों, गैर सरकारी संगठनों और अन्य पात्र संगठनों को कर्ज दिया जा सके। इस वर्ष ग्रामीण बुनियादी ढांचा विकास

कोष–6 की राशि 1,000 करोड़ रुपये बढ़ाकर 4,500 करोड़ रुपये कर दी जाएगी, और इसके कर्जों पर ब्याज आधा प्रतिशत कम कर दिया जाएगा। यहां यह उल्लेखनीय है कि ग्रामीण बुनियादी ढांचा विकास कोष, देहाती इलाकों की मूल–संरचना–परियोजनाओं के लिए धन जुटाने में कारगर और लोकप्रिय सिद्ध हुआ है। इसका प्रबंध नाबार्ड यानी राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक द्वारा होता है।

सरकारी क्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी समितियां कर्ज प्रदान करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कुछ राज्य सरकारों ने सहकारी संस्थाओं को बढ़ावा देने के लिए कानून बनाए हैं। गांवों में अधिक स्पंदनशील सहकारी ऋण व्यवस्था के लिए नाबार्ड में एक अलग कोष बनाया जा रहा है। भारतीय रिजर्व बैंक, बैंकों को यह सलाह दे रहा है कि वे उन सहकारी संगठनों को कर्ज देने में प्राथमिकता दें जो पूरी तरह उनके उपभोक्ता सदस्यों द्वारा नियंत्रित हों और जिसका प्रबंध वे विवेक–सम्मत तरीके से चला रहें हों।

ग्रामीण बैंक

क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के पुनः पूंजीकरण के प्रयास से ऐसे 150 बैंक कारोबारी मुनाफा दिखाने लगे हैं। इनमें से 48 बैंक तो पिछले घाटे को पूरा करने में सफल हुए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय व्यवस्था करने में इन बैंको के महत्व को देखते हुए इन्हें मजबूत बनाने का कार्यक्रम चलता रहेगा।

क्रेडिट कार्ड

किसानों को क्रेडिट कार्ड देने का कार्यक्रम बहुत ही संतोषजनक ढंग से आगे बढ़ रहा है। सहकारी बैंकों, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों और वाणिज्यिक बैंकों ने मिलकर किसानों को अभी तक 50 लाख कार्ड और कार्ड और पास–बुकें जारी की है। प्रयास यह होगा कि नाबार्ड और वाणिज्यिक बैंक अपने काम में तेजी लाकर मार्च 2001 तक 75 लाख और किसान क्रेडिट कार्ड जारी कर दें।

28 कृषि स्कीमों का एकीकरण

योजना आयोग और कृषि मंत्रालय ने केंन्द्र द्वारा प्रायोजित कृषि विकास की 28 वर्तमान स्कीमों को एक व्यापक कार्यक्रम में मिला देने के तौर–तरीके निर्धारित किए हैं। इससे एक ही काम के दोहरेपन से बचा जाएगा, समर्थन कार्यक्रम की उत्पादकता बढ़ जाएगी, और क्षेत्रीय प्राथमिकताओं के आधार पर कार्यकलापों को विस्तार देने और चलाने में राज्य सरकारों को अधिक सुविधा होगी। विलयन और विकेंद्रीकरण के उद्देश्यों की दिशा में यह एक बड़ा कदम है।

बांड राशि

कृषि को प्रोत्साहन देने के लिए इस बजट में बांडों से प्राप्त धन राशि को कृषि से लगाने का प्रावधान किया गया है। बुनियादी ढांचे के विकास को प्रोत्साहन देने की जो नई व्यवस्था की गई है, उसमें पूंजीगत लाभों पर करों में छूट तभी मिलेगी जब राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक (नाबार्ड) और भारतीय राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण द्वारा जारी बांडों में पूजी लगाई जाएगी। ये बांड पांच वर्ष के लिए होंगे और उनसे प्राप्त आय से कृषि क्षेत्र और राष्ट्रीय राजमार्ग विकास परियोजना के लिए वित्त की व्यवस्था की जाएगी।

> प्रधानमंत्री की ग्रामोदय योजना घुप अंधकार में डूबे जीवन बसर करने वाले गरीबों के लिए जन श्री बीमा योजना, जन–जन को लिखना पढ़ना सिखाने का सर्व–शिक्षा अभियान, बिना छत छप्पर के बदहाल जिंदगी जीने वाले लोगों के लिए व्यापक आवास–योजना, और भूमि के प्रभावी उपयोग के लिए राष्ट्रीय आयोग के गठन जैसी योजनाओं और कार्यक्रमों की महक इस बजट में है।

शहरी फार्म हाऊस

महानगरों और अन्य बड़े शहरों के आस–पास फार्म हाऊसों को वास्तविक कृषि कार्य के अलावा किसी अन्य साधन से होने वाली आय को कर के दायरे में लाने के लिए कानून में उपयुक्त परिवर्तन करने का प्रस्ताव है। असल में कई फार्म हाऊस रिहायशी आवास के लिए किराए पर दे दिए जाते हैं या फिर उनमें शादी–विवाह और अन्य समारोहों के आयोजन से काफी वाणिज्यिक आय होती है। लेकिन इस आमदनी की कृषि आय के रूप में गलत घोषणा कर कोई कर नहीं दिया जाता। जो छूट शुरू में वास्तविक किसानों को देने के लिए नीयत की गई थी, उसका खुल्लम–खुल्ला और स्पष्ट रूप से दुरुपयोग किया जाने लगा है। कानून में संशोधन करके सरकार को आय का एक बड़ा स्रोत मिल जाएगा।

सामाजिक सुरक्षा

गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले व्यक्तियों के लिए *जन–श्री बीमा योजना* वर्तमान सरकार का एक क्रांतिकारी कदम है। देश में एक तिहाई से अधिक आबादी गरीबी की रेखा के नीचे नारकीय जीवन व्यतीत कर रही है और इनमें से लगभग 99 प्रतिशत लोग गांवों में रहते हैं। इन्हें इस बीमा योजना के लिए दस रुपये या इससे भी कम रुपये मासिक प्रीमियम के रूप में देने होंगे जबकि लाभार्थियों को स्वाभाविक मौत होने पर 20 हजार रुपये, दुर्घटना में मृत्यु हो जाने पर या स्थायी रूप से विकलांग होने पर 50 हजार रुपये और दुर्घटना में स्थायी रूप से आंशिक विकलांग होने पर 25 हजार रुपये की सहायता राशि दी जाएगी। यह स्कीम हमारे देश के निर्धनतम व्यक्तियों के बीमे की सुदृढ़ नींव रख देगी।

महिला अधिकारिता

महिलाएं देश की कुल आबादी का लगभग आधा है और इनमें से कोई 70 प्रतिशत महिलाएं गांवों में रहती है लेकिन पंचायती राज संस्थाओं में उनके लिए 33 प्रतिशत स्थानों का प्रावधान करने के प्रयासों के बावजूद वे अभी बहुत पिछड़ी हैं तथा उनकी आर्थिक स्थिति भी अत्यंत शोचनीय है। उन्हें आर्थिक विकास की मुख्यधारा में समुचित स्थान दिलाने तथा राष्ट्रीय संसाधनों तक उनकी पहुंच बढ़ाने के उद्देश्य से सरकार एक कार्य दल गठित करेगी, जिसका अध्यक्ष एक जाना माना विशिष्ट व्यक्ति होगा। यह दल राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका से जुड़ी सरकारी स्कीमों और वर्तमान कानूनों की समीक्षा करेगा। यह कार्यदल सन् 2001 को महिला अधिकारिता

वर्ष के रूप में मनाने के लिए विशेष कार्यक्रम तैयार करने में सहायता भी देगा। अनुसूचित जनजातियों के कल्याण पर अधिक ध्यान देने के लिए जनजातीय मामलों का एक नया मंत्रालय बनाया गया है। जनजाति कल्याण के योजना का आवंटन 684 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 810 करोड़ रुपये कर दिया गया है।

> अगले वर्ष लगभग 60 हजार ग्रामीण बस्तियों और 30 हजार स्कूलों में पीने के पानी की सुविधा प्रदान करने का प्रस्ताव है। उद्देश्य यह है कि अगले पांच वर्षों में सभी ग्रामीण बस्तियों में पीने के पानी की व्यवस्था हो जाए। ग्रामीण विकास मंत्रालय में पेय जल आपूर्ति नाम का नया विभाग इस काम को तेजी से आगे बढ़ाने के लिए स्थापित किया गया है।

नन्हें उद्यम

बजट में महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़े वर्गों सहित कमजोर तबके के लोगों द्वारा गांवों में स्थापित नन्हें अथवा लघु उद्योगों को प्रोत्साहित करने पर विशेष जोर दिया गया है। इसके लिए राष्ट्रीय कृषि और ग्रामीण विकास बैंक, नाबार्ड, में 100 करोड़ रुपये की आरंभिक पूंजी से लघु वित्त विकास कोष बनाया जाएगा, जो नन्हें उद्यम शुरू करने के लिए स्वंय–सहायता समूहों की मदद करेगा। इधर बहुत से देशों में सूक्ष्म वित्तीय व्यवस्था गरीबी/दूर करने के एक कारगर साधन के रूप में उभर कर सामने आई है। लघु और नन्हें उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक दशा सुधारने में महत्वपूर्ण योगदान करते हैं। ये उद्योग, औद्योगिक उत्पादन, रोजगार पैदा करने और निर्यात बढ़ाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इधर सरकार, ऋणों और प्रौद्योगिकी के जरिये इस क्षेत्र की हर संभव सहायता करती है।

खादी और ग्राम उद्योग आयोग

सरकार खादी और ग्रामोद्योग क्षेत्र को प्रोत्साहन देना जारी रखेगी, जिससे इस क्षेत्र में तैयार चीजे, अधिक स्पर्धात्मक बन सकें। विपणन प्रयत्नों में तेजी लाने के लिए खादी और ग्राम उद्योग आयोग अपनी तैयार चीजों के लिए एक ही ब्रांड नाम शुरू करेगा और घरेलू तथा निर्यात विपणन के लिए एक ऐसी कंपनी स्थापित करेगा, जिसका प्रबंध व्यावसायिओं के हाथ में हो। वैसे भी यह आयोग, प्रति व्यक्ति कम पूंजी निवेश के बावजूद देहाती इलाकों में बड़े पैमाने पर रोजगार के अवसर पैदा करने में बहुत महत्वूपर्ण भूमिका निभा रहा है।

उत्तर–पूर्वी क्षेत्र

उत्तर–पूर्वी क्षेत्र में कृषि और बागान–विकास की क्षमता का उपयोग करने के लिए लघु सिंचाई और बागवानी की स्कीमों को बढ़ावा दिया जाएगा। इस क्षेत्र के राज्यों में बागवानी विकास के लिए एक प्रौद्योगिकी मिशन शुरू किया जाएगा। केंद्र इस क्षेत्र के बहुत से भागों में अलगाव की भावना दूर करने के लिए उसके तेज आर्थिक विकास के लिए प्रतिबद्ध है। व्यवसायिक शिक्षा की अधिक सुविधाएं प्रदान करने के लिए इन राज्यों में अगले दो वर्षों में 50 नए औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थान और 446 कंप्यूटर सूचना केंद्र खोले जाएंगे। उत्तर–पूर्वी क्षेत्र के राज्यों और सिक्किम की विभिन्न परियोजनाओं के लिए लगभग 500 करोड़ रुपये जारी किए जाने की आशा है।

सब्सिडियां

खाद्य और उर्वरकों पर सब्सिडियां, हमारे गैर–योजना खर्च का महत्वपूर्ण हिस्सा हैं। सब्सिडियों का भुगतान जिस दर से बढ़ता जा रहा है, उसे जारी नहीं रखा जा सकता। अब सब्सिडियों का लाभ उन्हें ही देने की जरूरत है जो गरीब और जरूरतमंद हैं। दूसरे व्यक्ति जो कुछ उपयोग करते हैं, उन्हें उसका भुगतान करना चाहिए। अब सब्सिडी युक्त खाद्यान्न उन लोगों को अधिक मिलेंगे जो गरीबी की रेखा के नीचे जीवन निर्वाह कर रहे हैं। इसलिए अगले वित्त वर्ष से लक्षित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के अंतर्गत गरीबी की रेखा के नीचे के परिवारों के लिए अनाज की मात्रा 10 किलोग्राम से बढ़ाकर 20 किलोग्राम कर दी जाएगी। इससे सबसे गरीब परिवारों को खाद्य–सुरक्षा कहीं बेहतर हो जाएगी। 1996 में तत्कालीन सरकार के निर्णय के अनुसार गरीबी की रेखा के नीचे जीवन व्यतीत कर रहे परिवारों को अनाज आर्थिक–लागत के 50 प्रतिशत के हिसाब से दिया जाएगा। इससे उनके खाद्य–बजटों में सुधार होगा। यह इसलिए संभव हो सका है कि गरीबी की रेखा के ऊपर के परिवारों को अब पूरी आर्थिक लागत पर अनाज बेचा जाएगा।

जहां तक चीनी का संबंध है, आयकर दाताओं को सार्वजनिक वितरण प्रणाली से कोई चीनी नहीं मिलेगी। अन्य लोगों को राशन की दुकानों से चीनी 13 रुपये प्रति किलो मिला करेगी। इन उपायों से अगले वित्त वर्ष अनाज और चीनी पर सब्सिडी घटकर 8,210 करोड़ रुपये रह जाएगी। रही बात उर्वरकों की तो यूरिया की अधिकतम खुदरा कीमत 15 प्रतिशत बढ़ाई जा रही है। बिना कंट्रोल वाले उर्वरकों पर भी रियायत–दर घटाई जा रही है। लेकिन मूल्यों पर प्रभाव कम करने के लिए डी.ए.पी. और एम.ओ.पी. खादों का अधिकतम खुदरा मूल्य सिर्फ क्रमशः 7 प्रतिशत और 15 प्रतिशत ही बढ़ाया जा रहा है। इन परिवर्तनों से 2000–2001 में उर्वरकों पर सब्सिडी के लिए 12,651 करोड़ रुपये खर्च करने पड़ेंगे।

> क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के पुनः पूंजीकरण के प्रयास से ऐसे 150 बैंक कारोबारी मुनाफा दिखाने लगे हैं। इनमें से 48 बैंक तो पिछले घाटे को पूरा करने में सफल हुए हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में वित्तीय व्यवस्था करने में इन बैंको के महत्व को देखते हुए इन्हें मजबूत बनाने का कार्यक्रम चलता रहेगा।

इन कुछ कार्रवाइयों से समाज के कुछ वर्गों में असंतोष होना स्वाभाविक है लेकिन ये कदम देर सबेर कभी तो किसी सरकार को उठाने ही पड़ते, वरना देश की आर्थिक स्थिति बद से बदतर होती चली जाती। ❑

सन 2000–2001 के बजट में
ग्रामीण विकास को प्राथमिकता

देवकृष्ण व्यास*

भारत गांवों का देश है और यहां की तीन चौथाई आबादी गांवों में रहती है। गांवों के विकास पर ही देश का विकास निर्भर करता है। स्वतंत्रता के 52 वर्षों के बाद भी आज हमारे गांव काफी पिछड़े हुए हैं। अधिकांश ग्रामवासियों को जीवन की बुनियादी सुविधाएं भी सुलभ नहीं है। गरीबी, बेरोजगारी, कुपोषण, अशिक्षा, पेयजल, आवास, स्वास्थ्य सेवाओं और सड़कों की कमी के कारण करोड़ों ग्रामवासी अमानवीय स्थिति में जी रहे हैं।

सरकार ने नई सहस्त्राब्दी के पहले बजट में ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी है। बजट प्रस्तावों द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने और ग्रामवासियों की लगभग सभी समस्याओं के समाधान के लिए प्रयास किया गया है।

नई सहस्राब्दी के पहले बजट में ग्रामीण विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है और यह उचित भी है क्योंकि गांवों का हमारी अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण स्थान है। देश की तीन चौथाई जनता गांवों में रहती है, इसलिए गांवों के विकास पर ही देश का विकास निर्भर करता है। दुर्भाग्य से, स्वतंत्रता के पांच दशक बाद भी गांवों की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं हो पाया है। करोड़ों ग्रामवासी गरीबी, बेरोजगारी और भुखमरी के कारण अमानवीय जीवन जीने के लिए विवश हैं। वित्तमंत्री यशवंत सिन्हा ने अपने बजट भाषण में स्वीकार किया है कि गांवों में बुनियादी सेवाओं की स्थिति काफी असंतोषजनक है। उन्होंने बताया कि चालीस प्रतिशत गांवों में उचित सड़कें नहीं है, 1.8 लाख गांवों में एक किलोमीटर के भीतर कोई प्राथमिक विद्यालय नहीं है, 4.5 लाख गांवों में पेयजल की समस्या है, कुछ अनुमान 140 लाख ग्रामीण रिहायशी आवासों की कमी दर्शाते हैं और ग्रामीण स्वास्थ्य के आधारभूत ढांचे में काफी कमियां हैं।

यह शुभ संकेत है कि वित्त मंत्री का ध्यान गांवों की दुर्दशा की ओर गया है और उन्होंने वहां के चहुंमुखी विकास के प्रति वचनबद्धता प्रकट की है। उनका यह कथन अक्षरशः सही है कि आर्थिक सुधार केवल शहरों तक ही सीमित नहीं रहने चाहिए बल्कि इनका लाभ ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों और विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों को भी मिलना चाहिए। सन् 2000–2001 के बजट में उनके इस दृष्टिकोण की झलक स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। शिक्षा, स्वास्थ्य, पेयजल, आवास और सड़कें – इन पांच तत्वों का गांवों के सामाजिक और आर्थिक जीवन में विशेष महत्व है। इनको सुलभ करने के लिए बजट में सराहनीय कदम उठाए गए हैं।

वास्तव में देखा जाए तो अशिक्षा गांवों के पिछड़ेपन का मुख्य कारण है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति के अन्तर्गत यूं तो शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए कई योजनाएं चल रही हैं किन्तु इस नए बजट में प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लिए *सर्व शिक्षा अभियान* नामक एक नई योजना शामिल की गई है। प्राथमिक शिक्षा के लिए योजना आवंटन 2,931 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 3,729 करोड़ रुपये कर दिया गया है। नई योजना 2003 तक सभी बच्चों को स्कूलों में दाखिल करने और उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, उड़ीसा और गुजरात के शेष जिलों में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम का विस्तार करने में सहायक होगी। राष्ट्रीय साक्षरता मिशन को सशक्त बनाया जाएगा ताकि सन् 2005 तक साक्षरता दर बढ़ाकर 75 प्रतिशत की जा सके।

यह गहरी चिन्ता का विषय है कि देश के अधिकांश गांवों में पेयजल की समस्या अत्यन्त गंभीर है। यद्यपि पिछले वर्षों में इस समस्या के समाधान के लिए प्रयत्न किए गए हैं किन्तु अभी भी असंख्य ग्रामवासियों को जीवन की

* वरिष्ठ पत्रकार

इस बुनियादी आवश्यकता के लिए बेहद परेशानियों का सामना करना पड़ रहा है। वित्तमंत्री ने अगले पांच वर्षों में सभी ग्रामीण बस्तियों में पेयजल सुविधाएं उपलब्ध करने के सरकार के संकल्प को दोहराया है। यह स्वागतयोग्य है कि इस कार्य को गति देने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय में नया पेयजल आपूर्ति विभाग कायम किया गया है। बजट के अनुसार अगले वर्ष में लगभग 60,000 बस्तियों और 30,000 विद्यालयों में पेयजल सुविधा उपलब्ध की जाएगी। इसके लिए विभाग का परिव्यय इस वर्ष के 1,807 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 2,100 करोड़ रुपये कर दिया गया है।

यह शुभ संकेत है कि वित्त मंत्री का ध्यान गांवों की दुर्दशा की ओर गया है और उन्होंने वहां के चहुंमुखी विकास के प्रति वचनबद्धता प्रकट की है। उनका यह कथन अक्षरशः सही है कि आर्थिक सुधार केवल शहरों तक ही सीमित नहीं रहने चाहिए बल्कि इनका लाभ ग्रामीण क्षेत्रों के निवासियों और विशेषकर अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति और अन्य पिछड़े वर्गों के लोगों को भी मिलना चाहिए।

बजट के प्रजनन और शिशु स्वास्थ्य कार्यक्रम के लिए 1,051 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है जबकि इसके लिए 1999–2000 में 695 करोड़ रुपये रखे गए थे। ग्रामीण आवास स्कीमों के लिए बजट में 1,710 करोड़ रुपये प्रस्तावित किए गए हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि वित्त मंत्री ने *प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना* नामक एक नई स्कीम की घोषणा की है। इस स्कीम के लिए 5,000 करोड़ रुपये का अलग से प्रावधान किया गया है। इसका उद्देश्य ग्रामीण लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समयबद्ध कार्यक्रम चलाना है। 5,000 करोड़ रुपये में से 2,500 करोड़ रुपये देहाती इलाकों में सड़क निर्माण पर खर्च किए जाएंगे। राज्यों के सहयोग से सड़क निर्माण का एक राष्ट्रव्यापी कार्यक्रम चलाया जाएगा। पूर्व बुनियादी न्यूनतम सेवा स्कीम को इस नई स्कीम में मिला दिया जाएगा। इस प्रकार गांवों की पांच बुनियादी आवश्यकताओं से सम्बंधित स्कीमों के लिए बजट में 13,000 करोड़ रुपये से अधिक का समग्र प्रावधान है।

वित्त मंत्री ने *सभी के लिए आवास* की सरकार की नीति को ध्यान में रखते हुए आगामी वित्त वर्ष में ग्रामीण क्षेत्रों में 25 लाख आवासीय इकाइयां उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखा है। इन्दिरा आवास योजना के तहत गरीबी की रेखा से नीचे के लोगों के लिए 12 लाख से अधिक घरों की व्यवस्था की जाएगी। इसके लिए बजट में 1,501 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई है। उन परिवारों के लिए जिनकी वार्षिक आय 32,000 रुपये से कम है, ग्रामीण ऋण और सब्सिडी स्कीम के तहत एक लाख घरों के निर्माण के लिए सहायता दी जाएगी। इस स्कीम के लिए बजट में 92 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। ग्रामीण आवास बैंक स्वर्ण जयन्ती ग्रामीण आवास वित्त स्कीम के तहत 1.5 लाख घरों के निर्माण के लिए बैंकों और आवास वित्त की उपलब्धता में और सुधार लाने के लिए सरकार ने नौवीं योजना के दौरान 'हुडको' को 350 करोड़ रुपये की इक्विटी सहायता मुहैया कराने का निर्णय किया है। इससे 'हुडको' ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 9 लाख घरों के निर्माण के लिए वित्तीय सहायता सुलभ कर सकेगा। सहकारी क्षेत्र और स्वयंसेवी एजेन्सियों के सहयोग से 1.5 लाख घरों का निर्माण संभव हो सकेगा। इस प्रकार ग्रामीण क्षेत्रों में आवास की समस्या के समाधान के लिए बजट में कई महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। आवास निर्माण से गांवों की बेराजगारी भी कुछ हद तक दूर होगी।

गांवों में गरीबी का विकराल रूप देखने को मिलता है। एक तिहाई से अधिक आबादी अभी भी गरीबी की रेखा से नीचे जीवन यापन कर रही है। यूं तो राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत संचालित राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन, राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना और राष्ट्रीय मातृत्व कल्याण योजना के जरिये गरीबी की रेखा से नीचे के परिवारों को कुछ सहायता मिल रही है किन्तु अभी तक सामाजिक सुरक्षा की दिशा में कोई कदम नहीं उठाया गया था। वित्त मंत्री ने सबसे गरीब वर्ग को सामाजिक सुरक्षा प्रदान करने के लिए एक नई स्कीम *जनश्री बीमा योजना* शुरू की है। इसके अन्तर्गत स्वाभाविक मृत्यु की स्थिति में 20,000 रुपये, दुर्घटनावश मृत्यु अथवा सम्पूर्ण स्थायी विकलांगता की स्थिति में 50,000 रुपये और दुर्घटना के कारण आंशिक स्थायी विकलांगता के लए 25,000 रुपये का बीमा कवर प्रदान किया जाएगा। मासिक प्रीमियम 10 रुपये अथवा उससे कम होने की आशा की गई है। निस्संदेह, यह योजना लाभकारी है और ग्रामवासियों द्वारा इसका अवश्य स्वागत किया जाएगा।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के अन्तर्गत सरकार ने *अन्नपूर्णा* नामक एक नई स्कीम शुरू की है। इस स्कीम में उन सभी लोगों को, जो वृद्धावस्था पेंशन के लिए पात्र होते हुए भी राष्ट्रीय वृद्धावस्था पेंशन प्राप्त करने से वंचित रह गए हैं, प्रति माह 10 किलोग्राम अनाज निशुल्क मुहैया किया जाएगा। अनुमान

वित्त मंत्री ने प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना नामक एक नई स्कीम की घोषणा की है। इस स्कीम के लिए 5,000 करोड़ रुपये का अलग से प्रावधान किया गया है। इसका उद्देश्य ग्रामीण लोगों की बुनियादी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए समयबद्ध कार्यक्रम चलाना है।

लगाया गया है कि इस योजना से 13 लाख से अधिक लोग लाभान्वित होंगे। इस योजना पर होने वाले प्रशासनिक खर्च को केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा 75:25 के अनुपात में वहन किया जाएगा।

वित्तमंत्री ने घोषणा की है कि वर्ष 2001 *महिला अधिकारिता वर्ष* के रूप में मनाया

(शेष पृष्ठ 65 पर)

रोजगार योजनाओं की सफलता में
अमल और निगरानी तंत्र की भूमिका निर्णायक

डा. कैलाश चन्द्र पपनै*

देश के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी और बेरोजगारी दूर करने के लिए चल रही अनेक विकास योजनाओं का जिक्र करते हुए लेखक ने बताया है कि जवाहर रोजगार योजना और ग्रामीण महिला तथा बाल विकास योजना काफी सफल रहीं। लेकिन बेरोजगारी की विकरालता और व्यापकता को देखते हुए यह प्रयास पर्याप्त नहीं थे। अब शुरू की गई स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना और जवाहर ग्राम समृद्धि योजना में पुरानी योजनाओं की खामियों को दूर किया गया है। लेकिन इनकी सफलता के लिए ग्रामीणों को इनके प्रति जागरूक करना जरूरी है।

देश में बेरोजगारी की समस्या अपने भयावह रूप में विद्यमान है, राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन द्वारा किये जाने वाले रोजगार–बेरोजगारी सर्वेक्षणों के 50वें दौर (1993–94) के आंकड़ों के अनुसार देश में बेरोजगार व्यक्तियों की संख्या 74.9 लाख है। निश्चित बेराजगारी के इस आंकड़े के अलावा ऐसे लोगों की संख्या भी करोड़ों में होगी जो चाहे किसी न किसी प्रकार के रोजगार में लगे हुए हैं, परन्तु वह रोजगार नाम–मात्र के लिए ही है। न तो उनके पास पर्याप्त अवधि के लिए पर्याप्त काम होता है और न ही उन्हें उचित जीवन–स्तर बनाये रखने लायक आय ही प्राप्त होती है।

चूंकि देश की अधिकांश आबादी गांवों में रहती है अतः वहां बेरोजगारी की समस्या अधिक गम्भीर है। आय तथा सामाजिक सुरक्षा का स्तर अपेक्षाकृत नीचा होने के कारण ग्रामीण आबादी का अपेक्षाकृत बड़ा हिस्सा बेरोजगार है। गांवों में प्रति 1000 पुरुषों में से 877 पर्याप्त रोजगार के बिना हैं जबकि शहरी पुरुषों के लिए यह संख्या 811 है, इसी प्रकार से गांवों में प्रत्येक 1000 महिलाओं में से 491 के पास रोजगार नहीं हैं तो शहरी महिलाओं के मामले में यह संख्या 238 है।

* वरिष्ठ संवाददाता, दैनिक हिन्दुस्तान

एक अनुमान के अनुसार वर्ष 1997 में देश की 95.11 करोड़ की अनुमानित आबादी में से 39.72 करोड़ लोग बेरोजगार थे। अनुमान है कि नौवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि (1997–2000) के दौरान इसमें 5.24 करोड़ की वृद्धि होगी तथा उसके बाद के पांच वर्षों में 5.8 करोड़ की तथा अगले पांच वर्षों (2007–2012) में 5.5 करोड़ की वृद्धि होगी। इसमें रोजगार के इच्छुक सभी लोग शामिल हैं, भले ही वे रोजगार में हो या न हों।

रोजगार या बेरोजगारी के आंकड़ों की विश्वसनीयता के बारे में प्रश्न–चिन्ह लगना एक सामान्य बात है। भारत जैसे देश में जहां कृषि क्षेत्र और स्वरोजगार के क्षेत्र में परिवार के लोगों द्वारा परस्पर मिलकर काम करना आम बात है। इससे अल्पकालिक बेरोजगारी तो अदृश्य रहती ही है, प्रायः दीर्घकालिक बेरोजगारी भी उभर कर सामने नहीं आ पाती है।

बेरोजगारी का सीधा परिणाम गरीबी होता है। भारत की 36 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन को मजबूर है। इसका अर्थ है कि देश में 32 करोड़ लोग अत्यंत गरीब हैं। इनमें से 24 करोड़ से अधिक लोग गांवों में रहते हैं। इसमें संदेह नहीं कि दो दशकों की अवधि में प्रतिशत दृष्टि से

सुनिश्चित रोजगार योजना के तहत कार्यरत महिलाएं

गरीबी में कमी आई, परन्तु कुल संख्या की दृष्टि से गरीबों की संख्या लगभग स्थिर बनी हुई है।

गरीबी उन्मूलन के प्रयास

गांवों में व्याप्त गरीबी दूर करना पंचवर्षीय योजनाओं के प्रमुख लक्ष्यों में रहा है परन्तु यह एक विशाल तथा जटिल कार्य था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के एक तरीके के रूप में गरीबी के प्रत्यक्ष रूप से निबटने की रणनीति के तहत अनेक कार्यक्रम प्रारम्भ किये गए और उनमें आवश्यकतानुसार संशोधन भी किये जाते रहे। ग्रामीण गरीबी उन्मूलन के उपायों में कुछ स्वरोजगार कार्यक्रम चलाए गए और कुछ मजदूरी पर आधारित रोजगार कार्यक्रम चलाए गए। स्वरोजगार कार्यक्रमों के अन्तर्गत समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवा प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्राइसम), ग्रामीण कारीगरों के लिए उन्नत किस्म के औजारों की आपूर्ति (सिटरा), ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं और बच्चों के विकास की योजना (डवाकरा) तथा मजदूरी–रोजगार पर आधारित कार्यक्रमों में जवाहर रोजगार योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना और दस लाख कुओं की योजना शामिल हैं।

जवाहर रोजगार योजना

गांवों में कृषि से जुड़ी गतिविधियां मौसम पर आधारित होने से रोजगार की स्थिति और बेरोजगारी की समस्या भी मौसमी आधार पर तय होती रहती हैं। जवाहर रोजगार योजना गांवों में अल्पकालिक और तात्कालिक रोजगार प्रदान करने की महत्वपूर्ण योजना रही है। जवाहर रोजगार योजना का प्रमुख उद्देश्य गांवों में बेरोजगार तथा आंशिक रोजगार वाले स्त्री–पुरुषों के लिए अतिरिक्त रोजगार पैदा करना रहा है। वित्त मंत्री ने पहली बार 1989–90 के अपने बजट भाषण में 120 पिछड़े जिलों में इस योजना को लागू करने की घोषणा की थी और इसके लिए 500 करोड़ रुपये का बजट प्रावधान रखा था। इसे पहले से चल रहे राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम में लगाये गए धन के शुरू किया गया परन्तु दोनों पुराने कार्यक्रमों का इसी में विलय कर दिया गया। इस नई योजना में केन्द्र व राज्य के बीच 80:20 के अनुपात से धन लगाने का प्रावधान रखा गया था।

जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत वर्ष 1997–98 तक कुल 2872.03 करोड़ रुपये उपलब्ध करवाए गए थे। परन्तु इसमें से 79.90 प्रतिशत राशि का ही उपयोग हो पाया। इस अवधि में 70,003 लाख श्रम दिनों का रोजगार सुलभ हो पाया। वर्ष 1998–99 के लिए इस योजना के अन्तर्गत 2078.44 करोड़ रुपये का आबंटन किया गया। यद्यपि योजना की निगरानी की व्यवस्था की गई परन्तु

बहुत–सी उम्मीदें पूरी नहीं हो पाईं। योजना के अन्तर्गत जारी दिशा–निर्देशों की भी अवहेलना होती रही। योजना के बारे में 1992 में योजना आयोग ने एक त्वरित अध्ययन किया और फिर ग्रामीण विकास मंत्रालय ने भी समवर्ती मूल्यांकन किया। इनमें योजना पर अमल में अनेक कमियां सामने आईं। मस्टर रोल न बनाने, योजना पर अमल के बारे में ग्राम प्रधानों, सरपंचों की अनभिज्ञता, महिलाओं को वांछित अनुपात में रोजगार न देना जैसी अनेक बातें इसमें शामिल हैं।

समवर्ती मूल्यांकन से एक विचित्र तथ्य यह भी उभर कर आया कि गांवों के दरिद्र और अत्यंत गरीब वर्गों के बजाय अपेक्षाकृत ऊंची आय वाले वर्गों को ही इस योजना में रोजगार के अधिक अवसर मिले। इससे पता चला कि योजना के अन्तर्गत रोजगार पाने

भारत की 36 प्रतिशत आबादी गरीबी रेखा से नीचे जीवन–यापन को मजबूर है। इसका अर्थ है कि देश में 32 करोड़ लोग अत्यंत गरीब हैं। इनमें से 24 करोड़ से अधिक लोग गांवों में रहते हैं।

वालों में से 57 प्रतिशत ऐसे थे जिनकी वार्षिक आय 6,401 रुपये से अधिक थी। जाहिर है कि कम आय वाले जिन वर्गों के लिए यह योजना बनी थी उन्हें इसका पर्याप्त लाभ नहीं मिला। इसी सूचना से जुड़ा पहलू यह भी है कि मात्र 2,265 रुपये वार्षिक तक की आय वाले वर्ग के सिर्फ 1.14 प्रतिशत लोगों को जवाहर रोजगार योजना का लाभ मिला। यदि 4,800 रुपये आय वर्ग तक के लोगों को भी शामिल कर लिया जाए तो उनका कुल योग 18.36 प्रतिशत बैठता है। परन्तु जवाहर रोजगार योजना का एक सुखद पहलू यह भी है कि 53.18 प्रतिशत मामलों में रोजगार भूमिहीनों को, 7.36 प्रतिशत मामलों में छोटे किसानों को, 34.32 प्रतिशत मामलों में सीमान्त किसानों को और 2.80 प्रतिशत मामलों में दस्तकारों को मिला।

जवाहर रोजगार योजना का एक उज्ज्वल पक्ष यह भी है कि ग्रामीण क्षेत्र में किये गए उन विकास कार्यों में जहां जवाहर रोजगार योजना और अन्य कार्यक्रमों के बीच समन्वय रखा गया वहां जवाहर रोजगार योजना का योगदान 95.52 प्रतिशत रहा। जवाहर रोजगार योजना से जुड़े 97.12 प्रतिशत लोग मानते हैं कि इस योजना के अन्तर्गत किए गए कार्य गरीबों के लिए उपयोगी हैं। रोजगार की दृष्टि से भी 73.85 प्रतिशत लोग इस योजना को संतोषप्रद मानते हैं। 82.32 प्रतिशत लोग योजना के अन्तर्गत सृजित परिसम्पत्तियों को समाज की जरूरतों के अनुरूप मानते हैं। परन्तु काम करने वालों में से अधिकांश 62.71 प्रतिशत लाभार्थी दी गई मजदूरी को अपर्याप्त मानते हैं। स्थानीय स्तर पर रोजगार पैदा करने में योजना की उपयोगिता का एक संकेत यह है कि 92.43 प्रतिशत श्रमिक उसी पंचायत क्षेत्र के थे जहां कि काम किया गया।

इस बात में संदेह नहीं कि जवाहर रोजगार योजना गांवों में रोजगार पैदा करने में सहायक सिद्ध हुई परन्तु जितना भी प्रयास हुआ है वह रोजगार की जरूरतों की तुलना में कम ही था। एक सर्वेक्षण के अनुसार यदि किसी व्यक्ति को जवाहर रोजगार योजना के अन्तर्गत माह में 3.81 दिन का औसत रोजगार मिला तो उसे अन्य कार्यक्रमों के अन्तर्गत 13.46 दिनों का औसत रोजगार मिला।

जवाहर रोजगार योजना का एक सुखद पहलू यह भी है कि 53.18 प्रतिशत मामलों में रोजगार भूमिहीनों को, 7.36 प्रतिशत मामलों में छोटे किसानों को, 34.32 प्रतिशत मामलों में सीमान्त किसानों को और 2.80 प्रतिशत मामलों में दस्तकारों को मिला।

अब तक के अनुभवों के आधार पर जवाहर रोजगार योजना का परिष्कार किया गया है और उसे पहली अप्रैल 1999 से जवाहर ग्राम समृद्धि योजना के रूप में लागू किया गया है। अब इसमें केन्द्र सरकार की तरफ से 75 प्रतिशत की और राज्यों की तरफ से 25 प्रतिशत की वित्तीय भागीदारी होती है। अब इस योजना में जोर इस बात पर है कि उपयोगी परिसम्पत्तियों का सृजन हो। इस दृष्टि से अब परियोजनाओं पर मजदूरी का अनुपात प्रयुक्त सामग्री की तुलना में कम हो सकता है। तदनुसार रोजगार के अवसर भी कम हो जाएंगे।

सुनिश्चित रोजगार योजना

गांवों में मजदूरी आधारित रोजगार देने की एक प्रमुख योजना सुनिश्चित रोजगार योजना रही है। इस योजना में गैर कृषि सीजन में जरूरतमंद बेरोजगारों को 100 दिनों का सुनिश्चित रोजगार देने का कार्यक्रम बनाया गया। दो अक्तूबर 1993 को प्रारम्भ की गई इस योजना को पहले देश के सूखा पीड़ित, रेगिस्तानी, आदिवासी और पर्वतीय क्षेत्रों के 1,778 विकास खंडों में लागू किया गया। धीरे–धीरे इसका विस्तार किया गया। यह भी तय किया गया कि जहां भी एक निर्धारित संख्या में लोग रोजगार की मांग करें वहां उन्हें श्रम आधारित रोजगार दिया जाए। 1996–97 तक चार वर्षों की अवधि में 6,514 करोड़ रुपये की राशि इस मद पर आबंटित की गई जिसमें से 81.02 प्रतिशत हिस्से का उपयोग करके 10,686 लाख मानव दिवस का रोजगार उत्पन्न किया गया। नवम्बर 1998 तक के आंकड़ों के अनुसार 14,621 करोड़ रुपये की उपलब्ध राशि में से सिर्फ 59.26 प्रतिशत राशि का उपयोग किया गया जिससे कुल 17,823 लाख मानव दिवसों का रोजगार पैदा हुआ। योजना के आरंभ होने से नवम्बर 1998 तक कुल 4.12 करोड़ लोगों का इसके अन्तर्गत पंजीकरण किया गया।

फिलहाल यह योजना देश के 5,448 ग्रामीण विकास खंडों में लागू है। परन्तु धन की कमी के कारण मांग के अनुरूप इस योजना को नहीं चलाया जा सका। हाशिम समिति द्वारा इस योजना पर अमल की समीक्षा के बाद इसमें संशोधन किया गया है। अब इसका जोर उन इलाकों पर अधिक है जहां ग्रामीण क्षेत्र में अधिक गरीबी है। जिलों को धन का आबंटन पिछड़ेपन के सूचकांक के आधार पर किया जाएगा। इस सूचकांक का निर्धारण प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादकता और अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति जनसंख्या के आधार पर किया जाएगा।

इस योजना को भी उपयोगी बनाने के लिए सामग्री और मजदूरी का अनुपात 60:40 निर्धारित किया गया है। अनुपयोगी कामों में धन की बर्बादी रोकने के लिए स्वागत द्वार, चहारदीवारी, मूर्तियों तथा प्रतिमाओं, स्मारकों, धार्मिक उद्देश्य से भवनों, सरकारी इमारतों, पंचायत भवनों, बड़े पुलों और सड़कों को पक्का करने जैसे कार्यों पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। इस बात की छूट दी गई है कि अन्य परियोजनाओं के साथ तालमेल कर इस योजना की राशि का उपयोग अन्य परियोजनाओं में मजदूरी के भुगतान के लिए किया जा सकता है।

इसमें दो राय नहीं है कि यह योजना गांवों में मजदूरी आधारित योजना के रूप में अपना महत्व कायम रखे हुए है।

दस लाख कुंओं की योजना

यह योजना वर्ष 1988–89 में प्रारम्भ की गई थी और नवम्बर 1998 तक इसमें कुल 4,728 करोड़ रुपये खर्च करके 12.63 लाख कुंओं का निर्माण किया गया। इस योजना का दुहरा लाभ यह हुआ कि सिंचाई के लिए पानी मिलने से किसानों की उत्पादकता बढ़ी जिससे अधिक उपज मिली और उनकी आय बढ़ी। दूसरी तरफ कुंओं के निर्माण में मजदूरी के रूप में भी भागीदारों की आय बढ़ी। यह योजना विशेष रूप से अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति और छोटे गरीब किसानों की आय बढ़ाने में कारगर सिद्ध हुई है।

स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना

मजदूरी आधारित रोजगार योजनाओं के साथ–साथ स्वरोजगार की योजनाएं भी गांवों में गरीबी उन्मूलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ये गरीबी पर सीधा हमला करने की रणनीति का महत्वपूर्ण अंग हैं। इस प्रकार की योजनाओं से व्यक्ति की बेरोजगारी की समस्या का स्थायी समाधान संभव है। इसमें स्वरोजगार के इच्छुक व्यक्ति को ऋण और अनुदान सहायता दी जाती है। आठवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान समन्वित ग्राम विकास कार्यक्रम के नाम से इस योजना के अन्तर्गत 108 लाख से अधिक परिवारों को 3,974.94 करोड़ रुपये की सब्सिडी दी गई जिससे ऋणं सहित कुल 11,540.25 करोड़ रुपये का निवेश संभव हुआ।

ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं व बच्चों के विकास की योजना, डवाकरा एक स्वरोजगार योजना के रूप में काफी सफल मानी जाती है, इसकी सफलता शायद इस बात में छिपी है कि यह सामूहिक प्रयास पर आधारित योजना रही है। यही वजह है कि अब अन्य स्वरोजगार योजनाओं में समूह–रणनीति के सफल होने की आशा की जा रही है।

व्यापक संभावना वाली इस योजना के अमल में अनेक खामियां देखी गई हैं। सब्सिडी के लालच में योजना शुरू करने वाले अनेक परिवार योजना के अव्यावहारिक होने और इसमें व्याप्त भ्रष्टाचार के कारण कर्ज में फंस कर रह गए।

प्राप्त अनुभवों के आधार पर अब इसे नए रूप में स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना के रूप में ढाला गया है। अब इसमें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, ग्रामीण महिला तथा बाल विकास कार्यक्रम, ग्रामीण कारीगरों को उन्नत किस्म के औजार किट की आपूर्ति, गंगा कल्याण योजना और दस लाख कुंओं की योजना का विलय कर पहली अप्रैल, 1999 से इसे नए रूप में लागू किया गया है। अब जोर इस बात पर रहेगा कि ऋण किसी व्यक्ति को देने के बजाय स्वरोजगार के इच्छुक व्यक्तियों के समूह को दिया जाए। इसमें इन समूहों के संगठन, प्रशिक्षण, प्रौद्योगिकी, ऋण और विपणन संबंधी आवश्यकताओं का ध्यान रखा जाएगा। सार्थक योजना व पर्याप्त निवेश की मदद से इस योजना को फलदायी बनाना संभव है।

ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं और बच्चों के विकास की योजना, डवाकरा एक स्वरोजगार योजना के रूप में काफी सफल मानी जाती है। इसकी सफलता शायद इस बात में छिपी है कि यह सामूहिक प्रयास पर आधारित योजना रही है। यही वजह है कि अब अन्य स्वरोजगार योजनाओं में समूह–रणनीति के सफल होने की आशा की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत छठी पंचवर्षीय योजना के बाद से अब तक 38 लाख से अधिक महिलाएं लाभान्वित हो चुकी हैं।

रोजगार योजनाओं पर अब तक के अमल से स्पष्ट है कि उनकी उपयोगिता के बारे में किसी प्रकार से संदेह नहीं किया जा सकता है। गांवों में बेरोजगारी दूर करने और अतिरिक्त आय सृजित करने में उनका महत्वपूर्ण योगदान भी स्पष्ट है। परन्तु योजनाओं पर अमल में आने वाली कठिनाइयों तथा योजना की कमियां भी प्रायः स्पष्ट हैं। योजनाओं में सुधार करते हुए उन्हें नया रूप देकर जवाहर ग्राम समृद्धि योजना और स्वर्ण जयन्ती स्वरोजगार योजना के नाम से लागू किया जा रहा है। इनमें कई पुरानी खामियों को दूर किया गया है परन्तु फिर भी योजनाओं पर अमल की प्रभावी व्यवस्था और चुस्त निगरानी तंत्र का महत्व असंदिग्ध है। इस काम में पंचायती राज संस्थाओं तथा जिला ग्रामीण विकास एजेंसी की भूमिका विशेष महत्व की है। कार्यक्रमों के बारे में सार्वजनिक रूप से पंचायत में व अन्य प्रमुख स्थानों पर सारी जानकारी को प्रदर्शित करना और क्षेत्र की जनता को उनके बारे में जागरूक बनाना आवश्यक है।

रोजगार कार्यक्रमों की सफलता सुनिश्चित करने का इससे अच्छा कोई उपाय नहीं हो सकता है कि सम्बद्ध गांव के हर व्यक्ति को उनके बारे में विस्तार से जानकारी हो और आवश्यकता होने पर वे इस बारे में अधिकारियों तथा पदाधिकारियों से सवाल भी पूछ सकें।

रोजगार कार्यक्रमों की सफलता सुनिश्चित करने का इससे अच्छा कोई उपाय नहीं हो सकता है कि सम्बद्ध गांव के हर व्यक्ति को

(शेष पृष्ठ 36 पर)

ग्रामीण बेरोजगारी : समस्या और समाधान

प्रकाश दुबे*

भारत में प्रति व्यक्ति आय अनेक छोटे–छोटे देशों से भी कम है। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की आय बढ़ाने और गरीबी तथा बेरोजगारी हटाने के लिए अनेक कार्यक्रम शुरू किए गए हैं जिनसे लोगों को गांव में ही काम मिले और ग्रामीणों का शहरों की ओर पलायन थमे। स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना और जवाहर ग्राम समृद्धि योजना ऐसी ही योजनाएं हैं जिनसे न केवल लोगों को रोजगार मिलता है बल्कि इनके लाभ के लिए स्थायी परिसम्पत्तियों का निर्माण भी होता है। लेखक के अनुसार इन कार्यक्रमों से अस्वच्छ काम और चमड़ा कमाने जैसे कार्यों में लगे लोगों को अन्य काम धंधे उपलब्ध कराकर गांवों में जातिगत भेदभाव दूर नहीं तो कम अवश्य किया जा सकता है।

दुनिया के विभिन्न देशों में प्रति व्यक्ति आय के आंकड़े देखने पर अजब तस्वीर नजर आती है। सोने की चिड़िया कहलाने वाले भारत का क्रम बहुत पीछे है। हैती जैसा छोटा और गुमनाम देश भारत से आगे है। यदि 2 दिसम्बर 1999 को संसद में पेश किए गए आंकड़े देखे जाएं तो भारत में व्यक्ति की औसत सालाना आय 370 डालर है। हैती 10 डालर आगे है।

लेटिन अमरीका देश व्यंग्य से केला (बनाना) लोकतंत्र के रूप में गिनाए जाते हैं। निकारागुआ इन पिलपिले लोकतांत्रिक देशों में शामिल है। निकारागुआ की औसत आय 410 डालर है। दूर के देशों की बात जाने दें। पड़ोसी देशों पर नजर डालें। भूटान में प्रति व्यक्ति आय 430 डालर है।

पाकिस्तान से हमारी होड़ का पैदायशी रिश्ता बन गया है। छदम युद्ध लाद कर भी भारत से पाकिस्तान हारा है। वैसे वहां प्रति व्यक्ति आय करीब 500 डालर है। दक्षेस देशों में मालदीव छोटा सा सदस्य–साथी है। वहां की औसत आय 1180 डालर है। सिर्फ बांग्लादेश तथा नेपाल भारत से पीछे हैं जिनमें बांग्लादेश मात्र 10 डालर प्रति व्यक्ति पीछे है।

* वरिष्ठ संवाददाता, नवभारत टाइम्स

विकास योजनाएं

भारत समृद्धि की ओर दौड़ता विकासशील देश है। कई मायनो में और अनेक मामलों में भारत ने बाकी देशों से बढ़त ली है। प्रति व्यक्ति आय कम होने का कारण है कि सोने की चिड़िया की स्थिति मयूर के पैरों की सी है। देश का कुछ हिस्सा अधिक खुशहाल है जबकि करोड़ों लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन बसर कर रहे हैं। जब तक उनका जीवन स्तर नहीं उठता, देश की तरक्की और विकास का ग्राफ नीचे की तरफ झुका रहेगा। यदि देश की आबादी एक अरब से कुछ कम मानी जाए तो 25 करोड़ जनसंख्या गरीबी रेखा पार नहीं कर सकी। विडम्बना ऐसी है कि देश में गरीबी रेखा से नीचे रहने वालों का प्रतिशत घटता जा रहा है किन्तु उनकी संख्या का आंकड़ा यथावत है। स्वतंत्रता के 50 वर्ष बीत जाने के बाद एक भी व्यक्ति का गरीबी रेखा के पीछे रह जाना देश की बड़ी उपलब्धियों को बेमानी बना जाता है। इस भावना को महसूस करते हुए कई योजनाएं लागू की गईं। कुछ योजनाएं बनाते समय महिला, कारीगर आदि विशेष वर्ग ध्यान में रखे गए।

देश के नीति–निर्माता जानते थे कि ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती बेकारी के कारण जन प्रवाह रोजगार की तलाश में शहरों की ओर मुड़ जाता है। इससे नगरों पर बोझ बढ़ता है। वहां का नियोजन चौपट होता है और तरह–तरह के तनाव–बिन्दु विकसित होते हैं। फलतः ऐसी योजनाओं पर जोर दिया गया जो गरीबों को गांव में ही रोजगार उपलब्ध करा दें ताकि वे परिवारजनों के निकट निश्चिंत होकर रहें तथा जीवन–स्तर सुधर जाए। इन योजनाओं का लाभ हुआ है। आंध्र प्रदेश के महबूबनगर जिले में छोटे से कस्बे में मैंने अपनी आंखों से यह सच देखा।

इस गांव की अनपढ़ और अधपढ़ी महिलाओं ने ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम डवाकरा का भरपूर फायदा उठाया। अब वे कपड़ा बुनतीं और खुद पैसे गिनकर

योजना की सबसे बड़ी खूबी यह है कि गरीबी रेखा से उबरने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति में आत्मनिर्भरता का भाव जगाया जाता है। वह इस बोझ के नीचे नहीं दब जाता कि सरकार अथवा कोई एजेंसी अहसान कर रही है। पहले योजना में शामिल व्यक्ति को लाभार्थी कहा जाता था। अब उसे स्वरोजगारी कहा जाता है। शब्दों के परिवर्तन से होने वाले जादुई चमत्कार की यह खूबसूरत मिसाल है।

बैंक में जमा करती हैं। इस तरह की विभिन्न योजनाओं के काम में समरूपता लाने के साथ ही ग्रामीण बेरोजगारी पर निर्णायक हमला करने की नीयत से *स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना* लागू की गई। इस योजना की खासियत सिर्फ इतनी नहीं है कि 50 हजार रुपये तक की निधि स्थानीय स्तर पर उपलब्ध करा दी जाती है। इसमें सरकारी महकमों से अनुमति के लिए वक्त जाया नहीं होता। योजना में एक शर्त यह है कि योजनाओं में महिलाओं का समावेश हो और आधी संख्या उनकी हो। मेरी दृष्टि में योजना की सबसे बड़ी खूबी यह है कि गरीबी रेखा से उबरने के लिए प्रयत्नशील व्यक्ति में आत्मनिर्भरता का भाव जगाया जाता है। वह इस बोझ के नीचे नहीं दब जाता कि सरकार अथवा कोई एजेंसी अहसान कर रही है। पहले योजना में शामिल व्यक्ति को लाभार्थी कहा जाता था। अब उसे स्वरोजगारी कहा जाता है। शब्दों के परिवर्तन से होने वाले जादुई चमत्कार की यह खूबसूरत मिसाल है।

गुठलियों के दाम

इस योजना का आधार व्यापक रखा गया है ताकि स्थानीय आवश्यकताओं का ध्यान रखकर क्रियान्वयन किया जा सके। मुझे लगता है कि दूरदृष्टि से काम लेने पर आम के आम और गुठलियों के दाम वाली कहावत चरितार्थ की जा सकती है। एक रोजगार दिलाकर जीवन स्तर सुधारा जा सकता है और साथ ही स्थायी परिसम्पतियों का निर्माण कर ग्राम तथा देश से जुड़ी अनेक समस्याओं का निदान खोजा जा सकता है। कर्नाटक के एक छोटे से गांव में मैंने एक प्रयोग देखा था। राजधानी के शहर बंगलौर से सौ किलोमीटर दूरी पर बसे होशाहल्ली में बिजली दमकती है। गांव वाले खुद बिजली बनाते हैं। उन्होंने आंगन में लगे नारियल की जटाओं, झुरमुटदार वृक्षों की पत्तियों का प्रयोग कर लघु बिजलीघर बनाया। धन तथा बिजलीघर के कच्चे माल की पूर्ति के लिए नंगे पहाड़ों को हरियाली पहना दी। गांव की आटे की चक्की तथा हर घर का कम से कम एक लट्टू इस बिजली से जलता है। बंगलौर के विज्ञान संस्थान तथा राजीव गांधी संस्थान ने मिलकर मदद की और गांव वालों ने यह कर दिखाया। यदि स्वर्ण जयंती योजना में इस तरह के कार्यक्रम हाथ में लिए जा सकें तो गैरपारम्परिक तरीके से बिजली तैयार होगी और लोगों को रोजगार मिलेगा। वे आटा चक्की चला सकते हैं। बिजली की दुकान खोल सकते हैं और आत्मनिर्भर हो सकते हैं।

इस महत्वाकांक्षी योजना का उपयोग देश का नक्शा बदलने के साथ ही देश की देह पर लगे दाग मिटाने के लिए किया जा सकता है। मसलन अनुसूचित जाति में सबसे अस्वच्छ काम में लगे लोगों को वैकल्पिक रोजगार दिलाया जा सकता है। यहां मध्य प्रदेश के अनुभव का उल्लेख करना अनुचित न होगा। अस्वच्छ काम में लगे लोगों के शिक्षित बच्चों को तिपहिये वाहन तथा मालवाही टैम्पो दिए गए। मवेशी का चमड़ा कमाने का काम करने वालों को अन्य कामों की तरफ प्रेरित करते हुए आर्थिक सहायता दी गई। स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना को जाति–उन्मूलन के लिए कामयाब हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है। पुश्तैनी रोजगार का विकल्प तलाश किया जा सकता है।

पुराने लोग बतलाते हैं कि जब रेल मंत्री जगजीवन राम ने स्टेशनों पर पानी पिलाने के लिए अनुसूचित जाति के लोगों की भर्ती

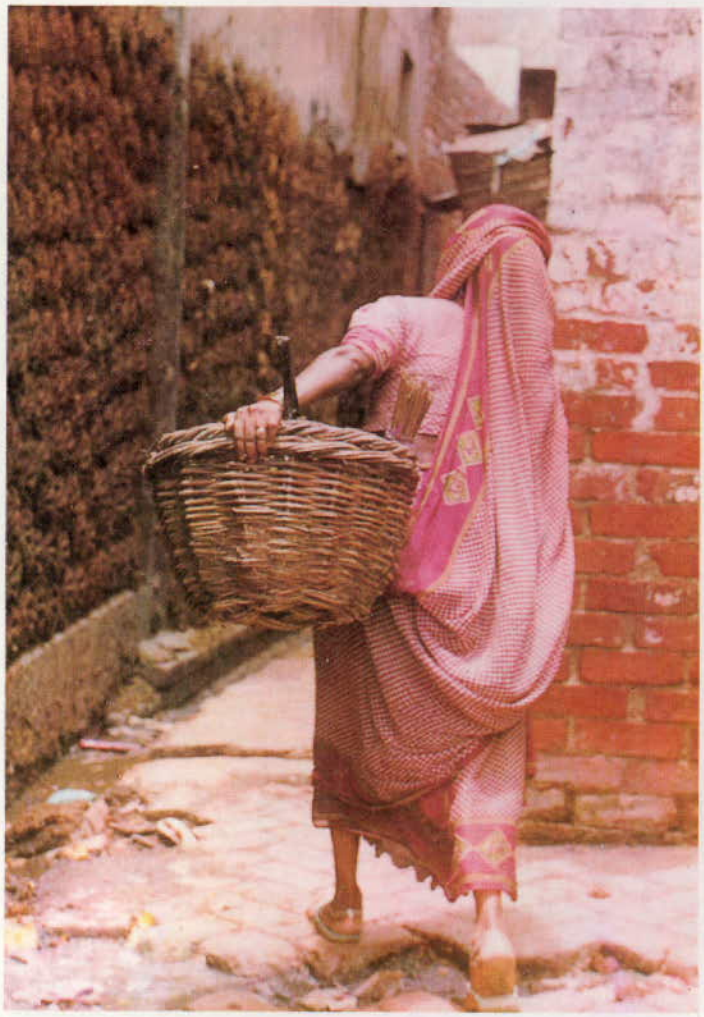

विभिन्न रोजगार योजनाओं के तहत अस्वच्छ काम में लगे लोगों को वैकल्पिक रोजगार देना संभव

(शेष पृष्ठ 71 पर)

हमारी सभी पंचवर्षीय योजनाओं में बेरोजगारी की समस्या से निपटने के प्रयास किए गए। छठी योजना के दौरान में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और सातवीं योजना के दौरान में जवाहर रोजगार योजना बेरोजगारी की समस्या से जूझने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम थे। लेकिन इन सबके बावजूद समस्या अपने विकराल रूप में आज भी विद्यमान है। इसका एक कारण ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षा है। इसके अलावा जनसंख्या विस्फोट और भ्रष्टाचार भी इसके लिए कम जिम्मेदार नहीं। और अब आधुनिक और अत्याधुनिक टेक्नालाजी के विस्तार से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों के और सिकुड़ने के आसार दिखाई दे रहे हैं।

ग्रामीण बेरोजगारी : समा

स्वतंत्रता आंदोलन के हमारे नेताओं ने आजादी के बाद हर हाथ को काम, हर तन को कपड़ा और हर परिवार को छत मुहैय्या कराने का सपना देखा था, लेकिन यह सपना आज तक पूरा नहीं हो पाया है। अगर हर हाथ को काम मिल जाता तो हर तन को कपड़ा और हर परिवार को छत अपने आप ही मुहैय्या हो जाती। दरअसल बेरोजगारी की समस्या इतनी व्यापक और जटिल है कि उसे यदि थोड़ा–बहुत भी हल कर लिया जाए तो यह बड़ी सफलता होगी।

ऐसा नहीं कि इस समस्या के समाधान की दिशा में प्रयास नहीं किए गए। वस्तुतः जब देश के योजनाबद्ध विकास की शुरूआत हुई तो यह ध्यान रखा गया कि भारत गावों का देश है और तीन चौथाई के करीब आबादी गावों में रहती है, इसलिए ग्रामीण भारत के उत्थान के लिए सार्थक कदम उठाए जाएं तभी ग्रामीण गरीबी और बेरोजगारी की समस्या से जूझा जा सकता है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के लिए निर्धारित लक्ष्यों और उद्देश्यों से यह बात, प्रमाणित होती है। 1951 से 1956 तक की पहली पंचवर्षीय योजना में सिचाई और बिजली परियोजनाओं सहित कृषि को जो सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई, उसके पीछे मूल मंतव्य यही था कि ग्रामीण किसानों की हालत सुधार कर ही देश की हालत सुधारी जा सकती है। योजनाकारों ने यह महसूस कर लिया था कि सार्वजनिक उद्यमों में भी ऐसे उद्यमों पर जोर दिया जाए जो कृषि के लिए सहायक हों, जैसे कृषि उपकरण बनाने वाले उद्यम या उर्वरक आदि बनाने वाले कारखाने। योजनाकारों को यह भी

* लेखक और कथाकार

धान क्या है

प्रदीप पंत*

अहसास था कि स्वाधीन भारत में कृषि विकास पर इसलिए भी जोर देना आवश्यक है क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था कृषि पर आधारित है और कृषि का सम्पूर्ण विकास करके ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या पर काबू पाया जा सकता है, नौकरी की तलाश में गांवों से युवाओं का शहरों की ओर पलायन रोका जा सकता है तथा कृषि जन्य सामग्री उपलब्ध करा कर बढ़ती आबादी की आवश्यकताएं भी पूरी की जा सकती हैं।

बेरोजगारी दूर करने के लिए औद्योगीकरण

1956 से 1961 तक की दूसरी पंचवर्षीय येाजना के जो तीन प्रमुख उद्देश्य निर्धारित किए गए थे, उनमें से एक था रोजगार के अवसरों का तेजी से विस्तार। जाहिर है कि सरकार और योजना आयोग बेरोजगारी की समस्या को हल करने के प्रति जागरूक थे। यही नहीं इसके समाधान तथा राष्ट्रीय, प्रगति के लिए खेती के साथ ही इस योजना में तीव्र औद्योगीकरण पर जोर दिया गया क्योंकि यह महसूस किया गया कि किसी भी प्रकार की प्रगति के लिए औद्योगिक प्रगति पहली शर्त है। मतलब कि यदि देश में हर खेत को हल और ट्रैक्टर देने हैं तो इस्पात पैदा करने वाले कारखाने लगाना बुनियादी जरूरत है। यह भी महसूस किया गया कि औद्योगीकरण काफी हद तक रोजगार के अवसर भी पैदा करेगा। और औद्योगीकरण से ऐसा हुआ भी। अनेक ग्रामीण, सुदूर अंचलों में भारी उद्योग स्थापित हुए, नई बस्तियां बसीं, स्थानीय लोगों को रोजगार मिला। लेकिन बेरोजगारी की समस्या समाप्त हो गई हो, ऐसा नहीं हुआ।

1961–62 से 1965–66 की अवधि में तीसरी पंचवर्षीय योजना कार्यान्वित की गई। इसके उद्देश्यों में खाद्यान्न में आत्मनिर्भरता, राष्ट्रीय आय में पांच प्रतिशत की वृद्धि, आर्थिक असमानता में कमी, आधारभूत उद्योगों के विस्तार जैसे इसके प्रमुख उद्देश्यों में मानव–संसाधनों का पूरा–पूरा उपयोग तथा रोजगार के अवसरों में पर्याप्त वृद्धि करना शामिल था।

इसके बाद कई कारणों से चौथी पंचवर्षीय योजना को अंतिम रूप नहीं दिया जा सका। अतः 1966 से 1969 के तीन वर्षों के दौरान तीन वार्षिक योजनाएं बनाई गईं। इस कारण देश का व्यापक योजनाबद्ध विकास कम हुआ और जब वर्ष 1969–70 से 1973–74 की चौथी पंचवर्षीय योजना अस्तित्व में आई, तब एक बार फिर से राष्ट्रीय लक्ष्यों को निर्धारित किया गया। इस योजना–अवधि के दौरान जो लक्ष्य तय किए गए, उनमें से एक था कमजोर तथा साधनहीन वर्गों के लोगों की दशा सुधारना। इसके अंतर्गत इन वर्गों की शिक्षा और रोजगार की व्यवस्था करने पर विशेष बल दिया गया।

1974 से 1979 की अवधि में जब पांचवीं योजना आरंभ की गई उस समय देश पर मुद्रास्फीति का भारी दबाव था। इसलिए मुद्रास्फीति पर नियंत्रण पाने और आर्थिक स्थिति को सुधारने को प्राथमिकता देते हुए इस योजना में आत्मनिर्भरता प्राप्त करने और गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों के जीवन–स्तर को सुधारने पर जोर दिया गया।

बुनियादी ढांचे को मजबूत करने पर जोर

इसके बाद 1980 से 1985 के दौरान छठी योजना पर अमल किया गया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी दूर करना था जिसके लिए कृषि और उद्योग दोनों के बुनियादी ढांचे को मजबूत करने पर बल दिया गया, क्योंकि तभी बेरोजगारी की समस्या से निपटना संभव था। इस योजना की एक विशेषता यह थी कि इसके अंतर्गत स्थानीय स्तर पर विकास कार्यों पर जोर दिया गया, ताकि आम जनता स्वयं अपने विकास के लिए भागीदार बन सके और इस क्रम में उसे रोजगार के अवसर भी मिल सकें।

1985 से आरंभ होकर 1990 तक चलने वाली सातवीं पंचवर्षीय योजना में एक बार फिर अनेक लक्ष्यों के साथ–साथ रोजगार मुहैय्या कराने पर ध्यान केन्द्रित किया गया। इसी योजना अवधि में बेरोजगारी और गरीबी को कम करने के लिए विभिन्न उपाय तो किए ही गए *जवाहर रोजगार योजना* जैसे विशेष कार्यक्रम भी शुरू किए गए। कहना न होगा कि *जवाहर रोजगार योजना* ग्राम–केन्द्रित थी। साथ ही साथ सातवीं योजना में लघु उद्योगों और खाद्य प्रसंस्करण उद्योगों पर भी बल दिया गया, क्योंकि इनके उत्पादों की खपत की भारी संभावना थी, जिससे ग्रामीण लोगों को रोजगार मिलने के अधिक अवसर भी उत्पन्न हुए।

रोजगार के अवसर जुटाने पर बल

लेकिन अस्थिर राजनीतिक स्थितियों के कारण एक बार फिर योजनाबद्ध विकास में बाधा पहुंची और 1990–95 की आठवीं पंचवर्षीय योजना क्रियान्वित नहीं की जा सकी। बहरहाल यह फैसला किया गया कि 1990–91 और 1991–92 को अलग अलग वार्षिक योजना वर्ष माना जाएगा और आठवीं योजना जून 1992 से आरंभ की जाएगी। इस आठवीं पंचवर्षीय योजना में दो बातों पर जोर, दिया

गया – एक, रोजगार के अधिक अवसर पैदा करना, दूसरे, सामाजिक परिवर्तन।

इसके बाद सामने आई वर्ष 1997–2002 की नवीं पंचवर्षीय योजना। इस योजना में जिन उद्देश्यों को सामने रखा गया, उनमें एक प्रमुख उद्देश्य था – पर्याप्त अर्थपूर्ण रोजगार पैदा करना तथा गरीबी उन्मूलन के उद्देश्य से कृषि और ग्रामीण विकास को प्राथमिकता देना।

यहां पंचवर्षीय योजनाओं पर सरसरी तौर पर जो नजर डाली गई है, उससे दो बातें स्पष्टतः सामने आती हैं। एक यह कि प्रत्येक योजना के अंतर्गत रोजगार के अवसर जुटाने पर ध्यान केन्द्रित किया गया। यह कार्य सीधे तौर पर रोजगार उपलब्ध करा के तो सम्पन्न किया ही गया, साथ ही कृषि, लघु उद्योगों, आधारभूत उद्योगों आदि को बढ़ावा देकर भी किया गया, ताकि रोजगार भी बढ़े और उत्पादकता में भी वृद्धि हो। दूसरी बात जो सामने आती है, वह यह कि योजनाओं को प्रायः कृषि केन्द्रित या ग्राम केन्द्रित किया गया, क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था गांवों और विशेषतः कृषि या कृषि उत्पादों पर निर्भर है। इसीलिए जिन आधारभूत उद्योगों पर योजनाओं के अंतर्गत बल दिया गया, वे भी अधिकांशतः ग्रामीण आवश्यकताओं की पूर्ति को ध्यान में रखकर लगाए गए, फिर चाहे वे इस्पात, कोयले आदि के उद्योग हों या फिर रासायनिक उर्वरकों, कृषि उपकरणों, कीटनाशकों आदि के उद्योग हों अथवा बड़ी नदी–घाटी योजनाएं हों।

गांव भारत की धुरी हैं। दूसरे शब्दों में, हम चाहे शहरीकरण या नगरीकरण की जितनी भी बात करें, किन्तु गांवों के बिना भारत की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि गांव न हों तो भारत के शहर भी अस्तित्व में नहीं रह सकते, क्योंकि अपनी तमाम चमक–दमक और अलग द्वीप से नजर आने के बावजूद हमारे शहर मूलतः और मुख्यतः गांवों पर ही निर्भर हैं। यही नहीं, शहरों में आज हमें जो श्रमशक्ति नज़र आती है, उसकी जड़ें भी गांवों में ही हैं। इसलिए गांवों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। गांवों की उपेक्षा करने का मतलब होगा अपने अस्तित्व को मिटाना। इसीलिए सभी पंचवर्षीय योजनाओं के अंतर्गत ग्रामीण श्रमशक्ति का सदुपयोग करने की ओर ध्यान दिया गया और अनेक नए कार्यक्रम आरंभ किए गए।

इस दिशा में 1980–81 में एक महत्वपूर्ण पहल की गई जिसे *समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम* के नाम से जाना जाता है। देश के सभी खंडों में केन्द्र सरकार ने यह कार्यक्रम लागू किया है जिसकी 50 प्रतिशत राशि राज्य सरकारें देती रही हैं। इसके अंतर्गत सरकारी सहायता तथा वाणिज्यिक बैंकों, सहकारी समितियों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के जरिये सावधि ऋण के रूप में मदद की

गांव भारत की धुरी हैं। दूसरे शब्दों में, हम चाहे शहरीकरण या नगरीकरण की जितनी भी बात करें, किन्तु गांवों के बिना भारत की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

जाती रही है ताकि ग्रामांचलों में स्वरोजगार के अतिरिक्त अवसर उपलब्ध हो सकें और देश में जो 36 प्रतिशत से अधिक लोग निर्धनता की रेखा के नीचे हैं, उनका जीवन–स्तर बेहतर हो सके। इस कार्यक्रम का लाभ जिन परिवारों को दिया जाता रहा, वे छोटे और बहुत छोटे किसान, खेत मजदूर, ग्रामीण दस्तकार थे। यह ध्यान रखा गया कि लाभ प्राप्त करने वालों में कम से कम 50 प्रतिशत अनुसूचित जातियों और जनजातियों के हों और इनमें 40 प्रतिशत महिलाएं तथा तीन प्रतिशत विकलांग हों। जाहिर है कि कार्यक्रम का लक्ष्य गांवों के वे लोग थे जो वंचित–पीड़ित थे और जिन्हें विकास के लाभ प्राप्त नहीं हो सके। कार्यक्रम की विशेषता यह है कि इसे ऊपर से नीचे की ओर नहीं लादा गया, वरन् निचले स्तर से ही लागू किया गया। इसी कारण कार्यक्रम के क्रियान्वयन का दायित्व जिला ग्राम विकास समितियों को सौंपा गया। जिनकी प्रबंध परिषदों में स्थानीय सांसद, विधायक, जिला परिषदों के अध्यक्ष, जिला विकास विभाग के प्रमुख तथा अनुसूचित जातियों, जनजातियों और महिलाओं के प्रतिनिधि होते हैं। ये समितियां खंड प्रशासन को कार्यक्रम लागू करने का दायित्व सौंपती हैं।

एक अन्य कार्यक्रम है – *ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना*, जो *ट्राइसम* के नाम से जाना जाता है और जिसकी शुरुआत 15 अगस्त 1979 को केन्द्र सरकार द्वारा समर्थित योजना के रूप में की गई। इसके अंतर्गत 18 से 35 वर्ष की आयु के ग्रामीण युवाओं को खेती–बाड़ी और सम्बद्ध कार्यकलापों, उद्योग, सेवाओं और व्यापार के क्षेत्र में अपना कामकाज आरंभ करने के लिए प्रौद्योगिकी तथा कौशल का प्रशिक्षण देना था। 1992–93 से 1996–97 के जो आंकड़े उपलब्ध हैं, उनसे पता चलता है कि इन पांच वर्षों में इस योजना के अंतर्गत 15.25 लाख युवाओं को प्रशिक्षण प्रदान किया गया, पांच लाख से अधिक युवाओं को स्वरोजगार के अवसर उपलब्ध कराए गए तथा 2.28 लाख से अधिक युवाओं को दिहाड़ी पर रोजगार दिलाये गए।

दस्तकारी ग्रामीण जीवन का एक महत्वपूर्ण पक्ष है। लाखों की संख्या में दस्तकार गांवों में देखे जा सकते हैं। लेकिन इन्हें अपने कार्यों का आधुनिकीकरण करने में मदद देना आवश्यक है। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए जुलाई 1992 से केन्द्र सरकार के समर्थन से देश के कुछ चुने हुए जिलों में एक योजना ग्रामीण कारीगरों को उन्नत औजार किट की आपूर्ति योजना सिटरा आरंभ की गई जो अब सम्पूर्ण देश में विस्तार पा सकी है। इस कार्यक्रम का लाभ परम्परागत कारीगरों को दिलाया जाता रहा ताकि वे अपना माल बेहतर बना सकें। लेकिन इनमें बुनकर, दर्जी, कशीदाकार और बीड़ी मजदूर शामिल नहीं हैं। 1992–93 से 1996–97 के पांच वर्षों की अवधि में इस कार्यक्रम पर 120.08 करोड़ रुपये खर्च किए गए और इसके अंतर्गत औजारों के 6.52 लाख किट बांटे गए।

हमने सातवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत *जवाहर रोजगार योजना* का उल्लेख किया था। यह 1989 में आरंभ की गई एक महत्वाकांक्षी योजना के रूप में सामने आई जिसे तत्कालीन *राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम* और *ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी*

कार्यक्रम को मिला कर बनाया गया। उद्देश्य था ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार और कम–रोजगार प्राप्त पुरुषों और महिलाओं के लिए लाभप्रद रोजगार के अतिरिक्त अवसर जुटाना। आठवीं पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत जवाहर रोजगार योजना को कुछ और बेहतर बनाया गया, ताकि बेरोजगारी वाले पिछड़े जिलों पर विशेष ध्यान केन्द्रित करते हुए हर व्यक्ति को 90 से 100 दिन तक रोजगार उपलब्ध कराया जा सके। यह योजना जब आरंभ की गई थी, तब यह तीन चरणों वाली थी। पहले चरण में इसे सभी ग्राम पंचायतों में लागू किया गया, दूसरे चरण में इसका देश के 120 पिछड़े जिलों में विस्तार किया गया और तीसरे चरण में इसके अंतर्गत रोजगार सम्बन्धी विशेष परियोजनाओं की शुरुआत की गई। लेकिन जनवरी 1996 में इस योजना में संशोधन करके दूसरे चरण को समाप्त कर दिया गया और पिछड़े

यह भी महसूस किया गया कि औद्योगीकरण काफी हद तक रोजगार के अवसर भी पैदा करेगा। और औद्योगीकरण से ऐसा हुआ भी। अनेक ग्रामीण, सुदूर अंचलों में भारी उद्योग स्थापित हुए, नई बस्तियां बसीं, स्थानीय लोगों को रोजगार के अवसर मिले। लेकिन बेरोजगारी की समस्या समाप्त हो गई हो, ऐसा नहीं हुआ।

जिलों को *सुनिश्चित रोजगार योजना, इन्दिरा आवास योजना* तथा *दस लाख कुओं की योजना* के अंतर्गत लाया गया। जहां 'इंदिरा आवास योजना' और 'दस लाख कुएं की योजना' गरीबों तथा अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लोगों के लिए घर तथा कुएं की सुविधा उपलब्ध कराने से सम्बद्ध थी और परोक्ष रूप से ग्रामीण रोजगार उपलब्ध कराती है, वहीं *सुनिश्चित रोजगार योजना* सीधे तौर पर रोजगार उपलब्ध कराने वाला कार्यक्रम है। इसकी शुरुआत 1993 में गांधी जयन्ती (2 अक्तूबर) के दिन 23 राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों के 1,778 विकास खंडों में की गई। बाद में कुछ अन्य क्षेत्रों में भी इसका विस्तार किया गया, जैसे कि बाढ़ की आशंका वाले विकास खंड। इसके अंतर्गत ऐसे अकुशल श्रमिकों को 100 दिन तक का रोजगार दिलाया जाता है जिनकी आयु 18 से 60 वर्ष के बीच हो। योजना पर 80 प्रतिशत राशि केन्द्र सरकार और केवल 20 प्रतिशत धन राज्य सरकारों द्वारा लगाए जाने का प्रावधान किया गया। उपलब्ध आंकड़ों के अनुसार इस योजना के तहत 1997–98 तक 8,205.20 करोड़ रुपये खर्च और 15,447.33 लाख कार्य दिवसों के लिए रोजगार मुहैया कराया गया।

कहना न होगा कि उपरोक्त के अतिरिक्त अन्य अनेक केन्द्रीय और राज्य स्तरीय मंत्रालय तथा *कपार्ट* जैसे अनेक स्वायत्त संगठन भी प्रत्यक्ष रूप से या स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से ग्रामीण बेरोजगारों की हालत सुधारने, उन्हें पूर्ण या आंशिक रोजगार उपलब्ध कराने तथा उनमें दक्षता का विकास कर उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के प्रयास में लगे हुए हैं।

लेकिन इन तमाम प्रयासों के बावजूद अभी महात्मा गांधी का 'ग्राम स्वराज' का सपना सार्थक होना दूर प्रतीत होता है। गांधी जी की परिकल्पना थी कि गांव पूरे तौर पर आत्मनिर्भर हों और सभी को गुजारे लायक काम मिले।

महात्मा गांधी की इस परिकल्पना को आज तक व्यवहार में नहीं उतारा जा सका है। इसी कारण समाज को सब कुछ देने वाले गांव स्वयं वंचित, अभावग्रस्त और अंधेरे हाशिये पर पड़े हुए हैं। दरअसल गांवों की मुख्य समस्या बेरोजगारी की है। यहां तक कि खेतिहर लोग भी अर्धबेरोजगारी की स्थिति में रहने के लिए विवश हैं, क्योंकि खेती उन्हें साल भर रोजगार उपलब्ध नहीं करा पाती। छोटी काश्त वाले किसानों की हालत और भी बुरी है। कारण कि कृषि की आधुनिक सुविधाओं ने उन्हें दिया कम और उनसे छीना अधिक है। बड़ी जोत वाले किसानों के मुकाबले उनके लिए फसल उगाना घाटे का सौदा होने लगा है। इसीलिए उनमें से अनेक तो धीरे–धीरे भूमिहीन मजदूरों में बदल गए और उनकी जमीन बड़ी जोत वाले किसानों ने खरीद ली है जो और भी बड़े

एक वक्त था जब बड़ी, पापड़, आलू आदि के चिप्स घरों में औरतें बनाती थीं और घर की आमदनी में कुछ वृद्धि कर लेती थीं, लेकिन अब इन चीजों के निर्माण में ऐसी अत्याधुनिक मशीनों का इस्तेमाल किया जाने लगा है जिनमें श्रमिकों की बहुत कम जरूरत पड़ती है। परिणाम यह है कि इस तरह के उद्योगों में रोजगार के अवसर कम होते चले जा रहे हैं।

काश्तकार हो गए हैं।

इसके अतिरिक्त गांवों में शिक्षा के अभाव ने भी बेरोजगारी की समस्या से निपटने में बाधा पहुंचाई है। यूं ही भारत में 52.21 प्रतिशत यानी आधे से कुछ ही अधिक लोग साक्षर हैं, लेकिन शिक्षित लोगों की संख्या तो बहुत ही कम है। यह थोड़ा–बहुत साक्षरता प्रसार भी नगरों, महानगरों और छोटे शहरों तक ही सीमित है। जिस देश में पढ़े–लिखे तक बड़ी संख्या में बेरोजगार हैं, वहां ग्रामीण निरक्षरों को रोजगार मिलने की आशा भला कैसे की जा सकती है।

यही नहीं जिस तरह की आधुनिक और अत्याधुनिक टैक्नौलाजी देश में विस्तार पाती जा रही है, उसके चलते गांवों में रोजगार के अवसर और भी सिकुड़ते जा रहे हैं। एक वक्त था जब बड़ी, पापड़, आलू आदि के चिप्स घरों में औरतें बनाती थीं और घर की आमदनी में कुछ वृद्धि कर लेती थीं, लेकिन अब इन चीजों के निर्माण में ऐसी अत्याधुनिक मशीनों का इस्तेमाल किया जाने लगा है जिनमें श्रमिकों की बहुत कम जरूरत पड़ती है। परिणाम यह है कि इस तरह के उद्योगों में रोजगार के अवसर कम होते चले जा रहे हैं।

यही स्थिति अन्य कुटीर और लघु उद्योगों की है। इन्हें चाहे जितना सहारा दिया जाए, किन्तु इनके उत्पादों की मांग बाजार में कम होती जा रही है। कारण यह कि इन उत्पादों की लागत ज्यादा पड़ती है, जबकि इनके मुकाबले मशीनों से किए जाने वाले उत्पादन

की लागत कम होती है, अतः वे सस्ते में उपलब्ध हो जाते हैं। फिर भला कोई कुटीर और लघु उद्योगों के माल को क्यों खरीदेगा। उदाहरण के लिए पूर्वोत्तर में बनने वाले शाल या गांवों में बनने वाले खादी के वस्त्रों को लें। बड़े कारखानों में बन कर बाजार में आने वाली शालों और कपड़ों की तुलना में ये काफी मंहगे होते हैं। इस कारण इन्हें चंद लोग शौकिया तौर पर भले ही खरीद लें, पर आम तौर पर बड़े कारखानों से बन कर आईं शालों और कपड़ों को ही लोग खरीदते हैं। खरीदारों को इससे मतलब नहीं होता कि यदि वे हाथ से बने शाल और कपड़ों को खरीदेंगे तो ज्यादा से ज्यादा लोगों को रोजगार के अवसर मुहैया होंगे।

इन तथा ऐसी अन्य समस्याओं से भी बड़ी और प्रमुख हैं दो समस्याएं – आबादी और भ्रष्टाचार।

जनसंख्या नियंत्रण पर हमारे देश में सबसे कम ध्यान दिया गया है। आज अगर पश्चिम के देश समृद्ध हैं, यदि उन्हें बेरोजगारी की विकट समस्या का सामना नहीं करना पड़ रहा, यदि वहां आबादी का घनत्व बहुत कम है, यदि लगभग सबको बेहतरीन आवास उपलब्ध हैं, यदि उन्हें स्वास्थ्य, पौष्टिक आहार, नई पीढ़ी को शिक्षा प्रदान करने आदि की समस्याओं से नहीं जूझना पड़ रहा है तो इसका मुख्य कारण यही है कि उन देशों ने जनसंख्या विस्तार नहीं होने दिया, बल्कि किसी–किसी पश्चिमी देश में तो आबादी स्थिर है और किसी–किसी में कम हो गई है। हमारे देश में स्थिति इसके विपरीत है। हम आजादी के समय 33 करोड़ थे, अब 100 करोड़ हैं। चूंकि भारत गांवों में बसता है, इसलिए जनसंख्या विस्तार भी गांवों में सर्वाधिक है। ऐसे में जवाहर रोजगार योजना हो या कोई भी अन्य योजना, उसका लाभ भला सबको कैसे मिल सकता है। इसलिए जरूरत इस बात की है कि जनसंख्या विस्फोट पर नियंत्रण पाया जाए। जब चीन इस दिशा में सफलता प्राप्त कर सकता है तो हम क्यों नहीं प्राप्त कर सकते। जरूरत है राष्ट्रीय सहमति से और राजनीतिक मतभेदों से ऊपर उठकर इस दिशा में तत्काल कदम उठाने की।

इसी तरह भ्रष्टाचार पर अंकुश लगाने की भारी आवश्यकता है। राजीव गांधी ने एक बार कहा था कि विकास पर खर्च होने वाले प्रत्येक एक रुपये में से केवल 15 पैसे लाभार्थियों तक पहुंच पाते हैं। कहना न होगा कि शेष 85 पैसे सरकारी अमले के वेतन और भ्रष्टाचार की भेंट चढ़ जाते हैं। ऐसे में चाहे रोजगार दिलाने की योजना हो या कोई अन्य कार्यक्रम देश की गरीब जनता उससे कैसे लाभान्वित होगी।

यदि जनसंख्या विस्फोट और भ्रष्टाचार की समस्या पर काबू पा लिया जाए तो स्थितियां बदल सकती हैं। और यह कार्य शासन–तंत्र तथा जन सामान्य दोनों को मिल कर करना होगा। आज लोगों में आम धारणा बन गई है कि सब कुछ सरकार को करना है, लेकिन किसी लोकतांत्रिक व्यवस्था में सब कुछ सरकार अकेले नहीं कर सकती। स्वयं लोगों को आम जनता को, आगे आना होगा। समस्या का समाधान शासन–तंत्र और जन सामान्य के पारस्परिक सहयोग पर ही निर्भर है। यदि इस सहयोग से जनसंख्या विस्फोट और भ्रष्टाचार की समस्या हल कर ली जाए तो रोजगार के अवसर दिलाने, अवसर और मांग के अनुकूल प्रशिक्षण देने, पिछड़े अंचलों का विकास करने जैसी समस्याओं को सहज ही हल किया जा सकता है। काम मुश्किल नहीं है, जरूरत है सामूहिक संकल्प–शक्ति की। वैसी ही संकल्प–शक्ति की जिसके सहारे हमने फौलादी ब्रिटिश शासन से लोहा लिया और गुलामी के जुए को उतार फेंका। साथ ही जरूरत इस बात की भी है कि ग्रामीण विकास का काम निचले स्तर से हो। अर्थात योजनाएं ऊपर से बन कर न आएं, बल्कि स्थानीय स्थितियों के अनुकूल एकदम निचले स्तर से बनें, पूर्णतः ग्रामवासियों के हाथों बनें और उन्हीं के द्वारा लागू की जाएं। बस केवल धनराशि का आवंटन ऊपर से – केन्द्र और राज्य सरकारों द्वारा – हो। पंचायती राज व्यवस्था से इस दिशा में कुछ आशा जागती है, लेकिन तभी जबकि पंचायतों पर नौकरशाही और जिला प्रशासन का नियंत्रण न हो, बल्कि जिला प्रशासन पंचायतों के प्रति जवाबदेह हो और स्वयं पंचायतों पर सम्पन्न ग्रामीणों के बाहु–बल और धन–शक्ति का दबदबा न हो। ❑

(पृष्ठ 29 का शेष) **रोजगार योजनाओं की सफलता में अमल.....**

उनके बारे में विस्तार से जानकारी हो और आवश्यकता होने पर वे इस बारे में अधिकारियों तथा पदाधिकारियों से सवाल भी पूछ सकें। ऐसा होने पर ही धन का दुरुपयोग या अनुपयोगी कार्यक्रमों पर धन खर्च करने की प्रवृत्ति पर अंकुश लग सकेगा। इससे भ्रष्टाचार भी समाप्त हो सकेगा और कार्यक्रमों का लाभ लक्षित समूहों को मिल सकेगा।

कार्यक्रमों का क्रियान्वयन दोषमुक्त होने के बाद भी एक बहुत बड़ी चुनौती यह है कि साधनों की सीमाओं के कारण रोजगार के उतने अवसरों का सृजन संभव नहीं है जितनी कि आवश्यकता है। 1993–94 के लिए राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के अनुमानों के अनुसार पूरे देश में 74.90 लाख लोग बेरोजगार थे। इसके अलावा यह भी अनुमान है कि 2.5 से 3 करोड़ तक लोगों को पूरे समय रोजगार नहीं मिल पाता है अतः आंशिक तौर पर वे भी बेरोजगार ही थे।

यह भी अनुमान लगाया गया है कि 1996–2001 की अवधि में देश में प्रति वर्ष 85.6 लाख नए लोग रोजगार की मांग करने लगेंगे। अतः प्रति वर्ष एक करोड़ नए रोजगार अवसर भी शायद अपर्याप्त ही रहें। इस राष्ट्रीय परिदृश्य की पृष्ठभूमि में देखा जाए तो सन् 2001 में गांवों में 32 करोड़ से अधिक लोगों को रोजगार की आवश्यकता होगी। वर्तमान स्थिति यह है कि गांवों में लगभग दो प्रतिशत पुरुषों व 10 प्रतिशत महिलाओं को सप्ताह में तीन दिन से भी कम का रोजगार मिल पाता है। गांवों में अदृश्य बेरोजगारी बहुत है क्योंकि बहुत से रोजगार व धंधे ऐसे हैं जिनमें परिवार के अनेक सदस्य खपे हुए होते हैं। इनके लिए मजदूरी पर आधारित रोजगार अवसर एक वरदान की तरह आते हैं। आवश्यकता इस बात की है कि ऐसे अवसरों की संख्या और अवधि में वृद्धि हो। ❑

ग्रामीण रोजगार की नई त्रिवेणी

जगमोहन माथुर*

पहली अप्रैल 1999 से पहले से चल रहे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, आई.आर.डी.पी. महिला और बाल विकास कार्यक्रम, डवाक्रा, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, ट्राइसम, ग्रामीण कारीगरों को उन्नत औजार किट की आपूर्ति योजना, सिटरा और गंगा कल्याण योजना का विलय करके स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना शुरू की गई है। इससे ग्रामीण गरीबों को गरीबी की रेखा से ऊपर लाने के लिए उन्हें छोटे–छोटे काम ध ंधे शुरू करने के लिए सहायता दी जाएगी। इसी तरह जवाहर ग्राम समृद्धि योजना पहले से चल रही जवाहर रोजगार योजना का नया रूप है जिसमें स्थायी परिसंपत्तियों का निर्माण कर ग्रामीण बुनियादी ढांचे को मजबूत किया जाएगा और रोजगार के अवसरों का सृजन किया जाएगा। दिहाड़ी रोजगार के लिए सुनिश्चित रोजगार योजना में भी सुधार किया गया है। इन योजनाओं के कार्यान्वयन में पंचायतों को प्रमुख भूमिका दी गई है। लेखक के अनुसार यद्यपि योजनाएं अच्छी हैं पर बहुत कुछ उनके कार्यान्वयन पर निर्भर करेगा।

गरीबी और बेरोज़गारी इस देश की गम्भीर समस्या हैं और स्वाधीनता के बाद इनके हल करने के निरन्तर प्रयासों के बावजूद, समाधान संभव नहीं हुआ है। निर्धन व्यक्तियों के प्रतिशत में कमी आने के बावजूद संख्या में कोई खास कमी नहीं आई है। 1973–74 में ज़हां गावों में गरीबी की रेखा से नीचे गुज़र बसर करने वालों की संख्या 26 करोड़ 10 लाख थी वहां 1993–94 में यह संख्या 24 करोड़ 40 लाख थी।

शहरों की ओर पलायन

गांवों में गरीबी का एक मुख्य कारण है बेरोज़गारी अथवा अल्प रोज़गार। ज़ो लोग गांवों में रहकर काम करना चाहते हैं उन्हें या तो बिल्कुल काम नहीं मिलता और यदि मिलता है तो फसल के कुछ महीनों के लिए। नतीजतन वे शहरों की ओर पलायन करते हैं। ग्रामवासियों में सबसे गरीब तबके को बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। कहीं–कहीं तो दो बख्त चूल्हा भी नहीं ज़लता। दरअसल ग्रामीण विकास का मूल लक्ष्य ही निर्धन और अभाव–ग्रस्त लोगों के ज़ीवन में बदलाव लाना है। बदलाव का मुख्य साधन गांवों में अधिक रोज़गार का सृज़न ही है। इस दृष्टि से कई योज़नाएं शुरू की गईं। आठवीं योज़ना के प्रारंभ तक ज़ो *योज़नाएं चल रही थीं उनमें प्रमुख हैं – जवाहर रोजगार योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, दस लाख कुओं की योजना, इंदिरा आवास योजना।* सातवीं पंचवर्षीय योजना के अंतिम वर्ष में 1 अप्रैल 89 से राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोज़गार गारंटी कार्यक्रम को मिलाकर एक नया कार्यक्रम शुरू किया गया ज़िसे *ज़वाहर रोज़गार योज़ना* का नाम दिया गया। इसका प्राथमिक उद्देश्य गांवों में बेरोज़गार और अल्प रोज़गार वाले व्यक्तियों के लिए लाभकारी अतिरिक्त रोज़गार उपलब्ध कराना था। इसका उद्देश्य यह भी था कि ग्रामीण आर्थिक ढांचे को सुदृढ़ करके लगातार रोजगार की पक्की व्यवस्था हो। 1993–94 से जवाहर रोज़गार योजना के साथ जो उप योजनाएं जोड़ी गईं वे थीं इन्दिरा आवास योजना तथा दस लाख कुओं की योजना। 1994–95 तक जवाहर रोजगार योजना तथा दो उप योजनाओं पर कुल मिलाकर 4,268 करोड़ रुपये के साधनों के उपयोग से 9,516.13 लाख श्रम दिवस का रोजगार उपलब्ध कराया गया।

सुनिश्चित रोजगार योजना

2 अक्टूबर 1993 से एक और योजना शुरू की गई जिसका उद्देश्य गावों में शारीरिक श्रम की मज़दूरी करना चाहने वालों को कम से कम 100 दिन के काम की गारंटी देना था। सुनिश्चित रोजगार योजना नाम की इस योजना के तहत 18 वर्ष से 60 वर्ष तक की आयु का कोई भी ग्रामीण जो मजदूरी करने का इच्छुक हो, अपना नाम रजिस्टर करवा सकता था।

इसके साथ देश में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम भी चल रहा था जो 1980 से देश के सभी विकास खण्डों में लागू हो चुका था। इसका उद्देश्य भी ग्रामीण क्षेत्र के गरीबों को कोई उत्पादक परिसम्पत्ति अथवा साधन या तकनीक उपलब्ध कराकर, स्वरोजगार प्रदान करना था। इसमें सब्सिडी अथवा बैंक ऋण दिलाया जाता था। केन्द्र ने गांवों में गरीबों के अनुपात को मानदण्ड रखकर आर्थिक साधन उपलब्ध कराए। कार्यक्रम के आरंभ से लेकर 1996–97 तक पांच करोड़ से कुछ अधिक परिवारों को इससे लाभान्वित किया गया और इस पर 1,1434.27 करोड़ रुपये खर्च हुए।

* वरिष्ठ पत्रकार

ट्राईसेम के तहत प्रशिक्षण प्राप्त करते प्रशिक्षणार्थी

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम से गरीब परिवारों की आमदनी बढ़ाने में मदद तो मिली पर यह वृद्धि इतनी पर्याप्त न थी कि परिवार सदैव के लिए गरीबी की रेखा से ऊपर उठ जाएं। सितम्बर 92 से अगस्त 93 के बीच एक मूल्यांकन के अनुसार इस कार्यक्रम से लाभान्वित परिवारों में से केवल 15.96 प्रतिशत परिवार ही संशोधित गरीबी रेखा–11,000 रुपये से (1991–92 मूल्यों पर आधारित) ऊपर उठ सके जबकि 54.4 प्रतिशत पुरानी गरीबी रेखा–6400 रुपए को ही पार कर सके। इसका कारण प्रति परिवार निवेश की कमी था। यद्यपि औसत प्रति परिवार निवेश निरन्तर बढ़ा पर यह वृद्धि राशि के रूप में ही दिखाई दी। मुद्रा स्फीति और परिसम्पत्ति की लागत बढ़ने के कारण वास्तविक रूप में यह नगण्य थी। 1993 में रिजर्व बैंक के तत्कालीन डिप्टी गवर्नर की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई जिसने इस कार्यक्रम को प्रभावी बनाने के लिए कई सुझाव दिए। इसके अनुसार गरीबी रेखा के नीचे के सभी परिवारों को लाभार्थी बनने का हकदार माना गया। प्रति परिवार निवेश को आने वाले वर्षों में प्रतिवर्ष बढ़ाते रहने का प्रावधान किया गया। गरीबों द्वारा बिना जमानत के कर्ज लेने की सीमा सभी के लिए 50,000 कर दी गई। इन उपायों के परिणामस्वरूप औसत प्रति परिवार निवेश जो 1992–93 में 7,889 रुपये था, 1996–97 में बढ़ाकर 15,036 रुपये हो गया। इन पांच वर्षों में कोई एक करोड़ परिवार लाभान्वित हुए। बाद में परिवारों की संख्या का लक्ष्य रखना ही छोड़ दिया गया।

लाभान्वित परिवारों की संख्या जाने बिना इस कार्यक्रम की सफलता का सही मूल्यांकन नहीं हो सकता। इस कार्यक्रम के साथ ही ग्रामीण युवाओं के प्रशिक्षण का कार्यक्रम चला। इसे *ट्राईसेम* कहा जाता है।

युवकों के लिए नई किरण 'ट्राईसेम'

ट्राइसेम में भी इसी तरह कई खामियां नजर आईं। जून से अगस्त 1993 में किए गए अध्ययन के अनुसार जितने ग्रामीण युवकों ने ट्राइसेम के अंतर्गत ट्रेनिंग ली उनमें से करीब 47 प्रतिशत युवक ट्रेनिंग के बाद भी बेरोजगार रहे। इन 32.54 प्रतिशत में से भी 12.41 प्रतिशत युवक ऐसा काम धंधा कर रहे थे जिसके लिए उन्होंने ट्राईसेम के अंतर्गत ट्रेनिंग नहीं ली। प्रशिक्षण प्राप्त कुल युवकों में से 73.38 प्रतिशत लाभार्थी स्वरोजगार से एक हजार रुपये मासिक कमा पाते थे। 63 प्रतिशत पुरूषों ने महसूस किया कि ट्राईसेम की ट्रेनिंग के फलस्वरूप उनकी सामाजिक या आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं आया। अधिकांश युवा ट्राईसेम के अंतर्गत वजीफा लेने में रुचि रखते हैं, ट्रेनिंग में नहीं।

1992 से गांवों के कारीगरों की मदद के लिए सुधरे औजार सप्लाई करने की योजना शुरू की गई। इसके अंतर्गत, बुनकर, दर्जी, सुई का काम या बीड़ी बनाने वालों को छोड़ कर अन्य कारीगरी करने वालों को 2,000 रुपये तक के औजार दिए जाते हैं। 1996–97 तक गांवों के कारीगरों को 6.10 लाख औजार किट बांटे गए। यह प्रयोग काफी सफल रहा।

पिछले कुछ वर्षों में संविधान की दृष्टि से भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। संविधान में 79वें संशोधन के फलस्वरूप पंचायतों को महत्त्वपूर्ण संवैधानिक अधिकार मिल गए और ग्रामीण विकास के कार्यों में उनकी भागीदारी बढ़ना सुनिश्चित हो गया।

इस प्रकार ग्रामीण विकास के विभिन्न

कार्यक्रमों पर फिर से विचार करके उन्हें सुचारू और युक्तिसंगत बनाना जरूरी हो गया। इन कार्यक्रमों की बहुलता के कारण आपसी तालमेल और पारस्परिक सम्पर्क मुश्किल हो गया। इसलिए पुनर्गठन के बाद ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार से सम्बन्धित तीन योजनाएं रह गई हैं। ये हैं :

- जवाहर समृद्धि योजना
- स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना
- सुनिश्चित रोज़गार योजना

जवाहर समृद्धि योजना

यह जवाहर रोजगार योजना का नया संस्करण है। पहली अप्रैल 1999 से शुरू की गई इस संशोधित योजना का उद्देश्य अतिरिक्त लाभप्रद योजना की व्यवस्था करके निर्धन ग्रामीणों के रहन–सहन को उन्नत करना है। इसका उद्देश्य गांवों में ऐसी परिसम्पतियों का निर्माण करना है जिनसे स्थायी रोजगार के अवसर बढ़ें तथा गांवों के बेरोजगार गरीबों को पूरक रोजगार भी मिले। वैसे तो जवाहर समृद्धि योजना का लक्ष्य गांवों में रहने वाले सभी लोगों के जीवन में सुधार लाकर उन्हें समृद्धि की ओर ले जाता है, पर गरीबी की रेखा से नीचे गुजर–बसर करने वाले अनुसूचित जातियों व जन–जातियों के लोगों तथा विकलांगों का विशेष ध्यान रखा जाएगा।

यह योजना पूर्णतः ग्राम पंचायत स्तर पर लागू की जा रही है। जिला ग्रामीण विकास एजेंसी व जिला परिषदें इसके लिए धनराशि, जिसमें राज्य सरकार का अंश भी शामिल है, ग्राम पंचायतों को सीधे उपलब्ध करायेंगी। इस योजना के अंतर्गत उपलब्ध धनराशि का 22.5 प्रतिशत हिस्सा अनुसूचित जातियों/जनजातियों के व्यक्तियों और तीन प्रतिशत भाग विकलांगों के लाभार्थ खर्च किया जाएगा। ग्राम पंचायतें 50,000 रुपये तक के काम ग्राम सभा के अनुमोदन से पूरा करा सकती हैं। पर इससे अधिक राशि के काम के लिए संबंधित तकनीकी/प्रशासनिक प्राधिकारियों की स्वीकृति आवश्यक है। ग्राम पंचायतें, 7,500 रुपये अथवा राशि का 7.5 प्रतिशत भाग जो भी कम हो, प्रशासनिक काम या तकनीकी सलाह लेने पर खर्च कर सकेंगी। ग्राम पंचायत को धनराशि, जनसंख्या के आधार पर ही दी जाएगी पर 10,000 रुपये की सीमा हटा दी गई है। मार्गदर्शन तालमेल, निगरानी आदि की जिम्मेदारी जिला विकास एजेंसी, और जिला परिषद की रहेगी।

स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना

दूसरी योजना है स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना। स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना के पूर्व समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम एक मात्र स्वरोजगार का कार्यक्रम था। बाद में ग्रामीण युवाओं के प्रशिक्षण का कार्यक्रम ट्राइसेम इसके साथ जोड़ा गया। बाद के वर्षों में ग्रामीण कारीगरों को उन्नत किस्म के औजारों की आपूर्ति (सिटरा), महिला और बाल विकास कार्यक्रम डवाकरा, गंगा कल्याण योजना आदि भी जुड़ते चले गए। कार्यक्रमों की बहुलता के कारण इनमें आपसी तालमेल नहीं रहा और अलग–अलग कार्यक्रमों के रूप में संचालित होने लगे। वे एक लक्ष्य की ओर बढ़ने की बजाय अपनी–अपनी ढपली, अपना–अपना राग अलापने लगे। इसी कारण इन सबका पुनर्गठन करने की आवश्यकता महसूस हुई।

> जो लोग गांवों में रहकर काम करना चाहते हैं उन्हें या तो बिल्कुल काम नहीं मिलता और यदि मिलता है तो फसल के कुछ महीनों के लिए। नतीजतन वे शहरों की ओर पलायन करते हैं। ग्रामवासियों में सबसे गरीब तबके को बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ती हैं। कहीं–कहीं तो दो बख्त चूल्हा भी नहीं जलता।

इसीलिए पहली अप्रैल 1999 से 'स्वर्ण जयंती स्वरोजगार' के नाम से एक नया और व्यापक कार्यक्रम शुरू किया गया। इसमें पिछले अनेक कार्यक्रम समाहित हैं और इसमें स्वरोजगार के सभी पहलुओं को सम्मिलित किया गया है जैसे कि गरीबों के स्वरोजगार समूह का गठन, गतिविधियों का चयन, प्रशिक्षण ऋण व्यवस्था, तकनीकी ढांचा तथा विपणन। स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना लागू हो जाने के बाद इसके पूर्व के कार्यक्रम जैसे कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ट्राइसेम, सिटरा आदि समाप्त कर दिए गए। नए कार्यक्रम में लाभार्थी को 'स्वरोजगारी' कहा जाता है। 'स्वरोजगारी' व्यक्ति भी हो सकता है और समूह भी।

स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना का उद्देश्य सहायता प्राप्त गरीब परिवारों को बैंक ऋण तथा सब्सिडी के माध्यम से आय सृजक परिसम्पत्तियां मुहैया कराकर उन्हें तीन वर्ष के भीतर गरीबी की रेखा के ऊपर लाना होगा। इसका अर्थ यह सुनिश्चित करना होगा कि एक परिवार की शुद्ध मासिक आय कम से कम 2,000 रुपये हो जाए। इस बात का प्रयास होगा कि अगले पांच वर्षों में प्रत्येक खण्ड में कम से कम 30 प्रतिशत गरीब परिवार इससे लाभान्वित हो जाएं। कार्यक्रम की गुणवत्ता पर कोई प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, अधिक से अधिक गांवों को लाभ पहुंचाने का प्रयास होगा।

स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना के अंतर्गत लघु उद्योगों का एक व्यापक कार्यक्रम चलेगा। लघु उद्योगों की स्थापना में समूह–गत दृष्टिकोण पर ध्यान रहेगा। प्रत्येक खंड के लिए वहां उपलब्ध संसाधनों, लोगों की व्यावसायिक दक्षता तथा बाजारों की उपलब्धता पर आधारित 4–5 गतिविधियों की पहचान की जाएगी। गतिविधियों का चयन खंड स्तर पर पंचायत समिति द्वारा तथा जिला स्तर पर जिला ग्रामीण विकास एजेंसी/जिला परिषद द्वारा किया जाएगा।

पहचान की गई हर गतिविधि के लिए एक परियोजना रिपोर्ट तैयार होगी जिसके बनाते समय बैंक और स्थानीय वित्तीय संस्थाओं से विचार–विमर्श किया जाएगा। इससे पर्याप्त मात्रा में ऋण की उपलब्धि आसान हो सकेगी। स्वरोजगारी को ऋण सम्बन्धी जरूरतों का ध्यानपूर्वक मूल्यांकन किया जाएगा तथा एक बारगी ऋण की बजाय अनेक चरणों में ऋण देने के तरीके को बढ़ावा दिया जाएगा। पर परियोजना रिपोर्ट तैयार करने के झमेले से संभव है कार्यान्वयन में विलम्ब हो।

इस योजना के अंतर्गत एक व्यवस्थित प्रशिक्षण कार्यक्रम के माध्यम से दक्षता का विकास होगा। प्रशिक्षण कार्यक्रम तैयार करने

में सावधानी की जरूरत है। ट्राइसेम के अनुभवों से सीखना होगा।।

जहां तक सब्सिडी का सवाल है, वह परियोजना लागत का 30 प्रतिशत तथा एक समान दर पर उपलब्ध कराई जाएगी, पर 7,500 रुपये की सीमा रहेगी। अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सम्बन्ध में यह सीमा 10,000 रुपये होगी। स्वरोजगारी समूह के लिए सब्सिडी परियोजना लागत का 50 प्रतिशत तक हो सकती है जिसकी सीमा 1.25 लाख रुपये तक होगी।

इस योजना के अंतर्गत निधियों में केंद्र का अंश 75 और राज्य का 25 के अनुपात में रहेगा। राज्यों के लिए केंद्र का आवंटन राज्यों में गरीबी की विकटता को ध्यान में रखकर किया जाएगा। यह उचित ही है। कुछ राज्यों में अन्य के मुकाबले अधिक गरीबी है।

इस योजना को अब नए ढंग से चलाने का प्रयास शुरू किया जा रहा है। योजना की एक विशेषता इसकी व्यापकता है।

सुनिश्चित रोजगार योजना

तीसरी योजना सुनिश्चित रोजगार योजना है। यह 2 अक्तूबर 1993 से चलाई जा रही है। शुरू में इसे विभिन्न राज्यों के सूखा प्रवण क्षेत्रों, मरुभूमि क्षेत्रों, जनजातीय क्षेत्रों और पर्वतीय क्षेत्रों के 1,778 खण्डों में प्रारम्भ किया गया था। अब यह देश के सभी 5,448 विकास खण्डों में चल रही है। पहली अप्रैल 1999 से इसे और सुचारु बनाया गया है।

इसका मुख्य उद्देश्य गैर कृषि मौसम में ग्रामीण क्षेत्र के सभी लोगों को जो जरूरतमंद है, काम करना चाहते हैं पर काम नहीं मिलता। इसके अंतर्गत प्रत्येक परिवार के अधिकतम दो वयस्कों के लिए 100 दिन का रोजगार सुनिश्चित करना है। अगर पहले से योजना या गैर योजना कार्यों में रोजगार के पर्याप्त अवसर उपलब्ध हैं तो इसके अंतर्गत नए काम शुरू नहीं किए जाते। इस योजना के अंतर्गत श्रम प्रधान कार्य ही शुरू होने चाहिए और उनसे टिकाऊ परिसम्पत्तियों का निर्माण होना चाहिए।

गांवों के इच्छुक मज़दूर इस येाजना के अंतर्गत काम करने के लिए ग्राम पंचायत के पास अपना नाम रजिस्टर कराते हैं। अगर 10 मजदूर सामूहिक रूप से रोजगार की मांग करते हैं तो खंड विकास अधिकारी रोजगार उपलब्ध कराने के लिए नई योजना शुरू करा सकता है। इस योजना के फलस्वरूप जिन मजदूरों को खेती और फसल के दिनों में तो गांव में काम मिल जाता है पर अन्य दिनों में बेकार रहते हैं, वे इससे रोजी कमा सकते हैं।

स्वरोजगार योजनाओं के तहत प्राप्त सहायता से महिलाएं स्वावलंबी बन सकती हैं

इस योजना के अंतर्गत व्यय में केंद्र व राज्य सरकार के व्यय का अनुपात 75:25 का है। 1998–99 वर्ष में केंद्र का आवंटन 1,990 करोड़ रुपये था जो मार्च 99 तक राज्यों/केंद्र शासित क्षेत्रों को दिया गया।

इसके अंतर्गत कुल मिलाकर 4.29 करोड़ व्यक्तियों ने अपना नाम दर्ज कराया है। मार्च 1999 तक 4165.31 श्रम दिवसों का रोजगार उपलब्ध कराया जा चुका है।

इस योजना को सुचारु बनाने और खामियां दूर करने के लिए एक कदम यह उठाया गया है कि निर्माण कार्यों में ठेकेदारों की भूमिका समाप्त कर दी गई है। राज्यों से मजदूरी की मानक दरें प्रकाशित करने को कहा गया है। इस योजना के अंतर्गत फर्जी मस्टर रोल बनाकर कल्पित लोगों को मजदूरी देने के बहाने रुपये हड़प के घपले होने का खतरा है। अब तीनों स्तरों पर पंचायती राज संस्थाएं कार्यान्वयन एजेंसी के रूप में काम करेंगी उन्हें मस्टर रोल, मजदूरी भुगतान कार्य की गुणवत्ता की निगरानी के लिए लाभार्थियों में से एक को निगरानी अथवा देखरेख के काम पर लगाया जा सकता है। इस योजना के कार्यान्वयन को अधिक पारदर्शी बनाने के लिए समस्त राज्यों को जारी की धनराशि, मंजूर किए गए कार्यों, अनुमति लागत उपयोग में ली गई सामग्री की मात्रा काम में लगे श्रमिकों तथा कार्यस्थल पर मजदूरी की दरें स्पष्ट रूप से प्रकाशित करने के लिए निर्देश दिए गए हैं। पंच–सरपंच अभी अनुभव हीन हैं। हाल में उन्हें अधिकार मिले हैं। कुछ समय बाद ही मालूम हो सकेगा कि निर्धारित निर्देशकों का पालन हो रहा है या नहीं।

तभी समाधान संभव

इन तीन योजनाओं को नए रूप में ढाल कर रोजगार की नई त्रिवेणी बनी है। तैयार योजनाओं का अच्छा होना पर्याप्त नहीं है। येाजनाओं की सफलता मूलतः अच्छे कार्यान्वयन पर निर्भर है। इसमें मुख्य भूमिका पंचायती राज संस्थाओं की रहेगी। जिला परिषद व जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों के साथ तालमेल और निगरानी की सुदृढ़ व्यवस्था ही इन्हें सफल बना सकती है तभी ग्रामीण बेरोजगारी की विकट समस्या का समाधान निकालना संभव होगा। ❑

ग्रामीण रोजगार
प्रश्न है दृष्टि और प्रतिबद्धता का

श्रीवल्लभ शरण*

लेखक के अनुसार गांवों में बेरोजगारी की समस्या से निपटने में अनेक अड़चनें हैं। आबादी बढ़ रही है, कृषि योग्य भूमि घट रही है, उद्योग लगाने के लिए पूंजी का अभाव है, बिजली और परिवहन सुविधाएं उपलब्ध नहीं। लेखक का कहना है कि बेरोजगारी दूर करने के सरकार के प्रयासों में अब तक विशेष सफलता नहीं मिली। अब सरकार को अपनी भूमिका सूचना देने तक सीमित करते हुए लोगों को बताना चाहिए कि लघु उद्योग स्थापना की संभावनाएं कहां पर हैं, प्रशिक्षण सुविधाएं कहां पर, और तैयार सामान की बिक्री व्यवस्था कहां पर। इसके अलावा अनुदान देने की नीति का परित्याग कर लोगों को कम ब्याज पर ऋण दिए जाने चाहिए। फसल बीमा योजना पूरे देश में लागू की जाए और ग्रामोद्योग को बढ़ावा दिया जाए।

देश का माहौल तो अभी गांव और गांव में रोजगार के प्रतिकूल है। हवा बड़े उद्योग, बड़ी कंपनियों, बड़े मुनाफे, तेज मशीनों, बड़े कृषि फार्मों, बड़ी तनख्वाहों और चमक–दमक भरी जिंदगी – 'नेट', 'कोक' और सौन्दर्य–प्रतियोगिताओं की है। रातोंरात अरबपति बनने वाले (चाहे जैसे भी बनते हों) युग–नायक हैं। धूमधाम–उदारीकरण, निजीकरण और वैश्वीकरण के वातावरण में गांव की सुध कौन ले, वहां की बेरोजगारी के पीछे कौन माथा–पच्ची करे?

मगर गांव तो एक वास्तविकता है। देश के तीन–चौथाई लोग, लगभग 5.98 लाख गांवों मे सदियों से रह रहे हैं। वे देश को खाद्यान्न देते हैं; उद्योगों के लिए बहुत सारा कच्चा माल देते हैं; उन्होंने देश की सांस्कृतिक विरासत को बचाकर रखा है। गांधी जी ने उन्हें देश की आत्मा माना था। व्यापक अर्थों में इस देश का अस्तित्व गांव के अस्तित्व से जुड़ा है। गांव को खुशहाली चाहिए जिसके मध्य में ग्रामीण रोजगार है।

गांव को बचाने की सबसे सुनिश्चित राह है उसे बनाने की और उसे बचाने तथा बनाने में सबसे अहम भूमिका होगी रोजगार की। लोगों को आज की आवश्यकतानुसार जिन्दगी जीने के साधन मिलें। और, इसके लिए रोजगार चाहिए।

बेरोजगार के चक्रव्यूह में फंसे गांव

गरीबी है तो रोजगार नदारद। रोजगार नहीं तो गरीबी निश्चित। इस प्रकार गांव बेरोजगारी के चक्रव्यूह में फंसे है। बढ़ती आबादी, बढ़ती बेकारी, बढ़ता असंतोष और बढ़ती हिंसा ने तबाही मचा रखी है। उनसे निपटने के प्रयास आधे–अधूरे और बेमन से किये जा रहे लगते हैं, जैसे ऊपर से मखमली चादर से ढक देने से भीतर का घाव भर जाए; लुभावने नारों से समस्याओं का समाधान निकल आए। पचास के दशक के सामुदायिक विकास के प्रारंभिक दिनों से अब तक यही प्रक्रिया चल रही है और परिणाम सामने है लोग गांव छोड़ रहे हैं और शहर में जगह नहीं है। इस तरह गांव बिखर रहे हैं और शहर गन्दी बस्तियां बन रहे हैं। समय है समस्याओं का सामना करने का; उन पर निरपेक्ष रूप से विचार करने का और उन विचारों से जो समाधान निकले, उन्हें निष्ठा और दृढ़तापूर्वक मूर्त्त रूप देने का।

1901 में देश की ग्रामीण आबादी 21.30 करोड़ थी (कुल आबादी का 89.2 प्रतिशत) और शहरी आबादी 2.60 करोड़ (10.8 प्रतिशत)। ग्रामीण आबादी का प्रतिशत घट कर 1991 में 74.3 पर अटका और शहरी आबादी का प्रतिशत 25.7 प्रतिशत पर जा पहुंचा। देश की कुल आबादी इस बीच 24 करोड़ से बढ़कर 84 करोड़ हो गई और अगली जनगणना में उसके एक अरब का आंकड़ा पार कर जाने का अनुमान है। ग्रामीण आबादी लगभग तीन गुनी और शहरी आबादी ढाई गुनी बढ़ी है।

इतनी बड़ी आबादी के लिए, उतने ही व्यापक रोजगार चाहिए और गांवों में रोजगार वे ही टिकाऊ होंगे जो मुख्यतः ग्रामीण संपत्ति पर आधारित होंगे।

* भारतीय प्रशासनिक सेवा के सेवा निवृत्त अधिकारी

गांव की संपत्ति है जमीन, जल, जंगल और कहीं–कहीं खनिज पदार्थ। गांव के लोग स्वयं में बड़ी संपत्ति हैं, यह दूसरा पक्ष है और एक सत्य है। मगर क्या हाल है इनका?

खेती की जमीन घटी है– आबादी के लिए अधिक रिहायशी जमीन चाहिए और वह खेती की जमीन से निकली है। जमीन के कटाव, औद्योगीकरण और शहरीकरण ने खेती की जमीन का बड़ा हिस्सा ले लिया है। गांव के 8.14 प्रतिशत परिवार भूमिहीन हैं और 34.26 प्रतिशत परिवारों के पास 0.20 हेक्टेयर से कम जमीन है।

जंगल घटा है। देश की वन–नीति के अनुसार पर्यावरण के संतुलन की दृष्टि से जमीन का एक तिहाई भाग जंगल होना चाहिए। अभी भौगोलिक दृष्टि से 19.27 प्रतिशत भूमि वन–क्षेत्र घोषित है। मगर वन की गहनता की दृष्टि से मात्र 11 प्रतिशत भूमि पर ही जंगल बचा है। शेष वन–क्षेत्र के अंदर झाड़–झाड़ियां या खुली जमीन है।

वन के संरक्षण और विकास और वन–पदार्थ पर आधारित उद्योगों में रोजगार के अनेक अवसर हैं। वन–संरक्षण से संबद्ध कानूनों–नियमों को कठोर बनाने और वन–प्रशासन को पूर्णतः सक्षम बनाने की जरूरत है।

प्राकृतिक समस्याओं से कैसे निपटें

पानी की समस्या बड़ी है–पीने के पानी से लेकर सिंचाई के पानी तक। सर्वेक्षणों के अनुसार जमीन के अंदर इतना पानी उपलब्ध है कि दो तिहाई से अधिक कृषि–भूमि सिंचित हो सके। लेकिन कुल कृषि क्षेत्र का एक तिहाई भाग ही सिंचित भूमि है। बाढ़ की विभीषिका बढ़ रही है। बिहार, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, असम, पश्चिम बंगाल आदि प्रति वर्ष बाढ़ से बुरी तरह प्रभावित होते हैं और जान–माल से लेकर घर–द्वार और फसल तक की बड़ी बर्बादी होती है।

जमीन के अंदर जो खनिज पदार्थ हैं, उनका दोहन प्रारंभ होते ही, गांव गंदी बस्तियों वाले शहर में बदल जाते हैं। गांवो की जमीन जाती है। खानें निजी या सार्वजनिक क्षेत्र में रहें, प्रश्न है उनका दोहन वैज्ञानिक रूप से हो और स्थानीय लोगों को रोजगार मिले। स्थानीय लोगों का शोषण नहीं हो और खान से होने वाली आमदनी का एक उचित अंश स्थानीय परिवहन, शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के विकास पर अनिवार्य रूप से खर्च किया जाए।

ग्रामीण रोजगार का दूसरा बड़ा क्षेत्र उद्योग है। इस प्रकार ग्रामीण रोजगार के जो साधन हैं (जमीन, जल, जंगल, खनन पदार्थ, पारंपरिक कार्य–कौशल) उन्हें सुरक्षित रखना और आधुनिक तकनीकों का उपयोग कर उनकी गुणवत्ता बढ़ाना रोजगार पाने का एक ठोस आधार होगा।

हथकरघा भी ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने का सशक्त साधन है

ग्रामीण विकास और उस हद तक ग्रामीण रोजगार – उन्नत खेती, कुटीर उद्योग और अन्य कारोबार – में स्थानीय स्तर की मुख्य बाधाएं हैं :

- बिजली की कमी,
- पूंजी की कमी,
- आवागमन में असुविधा,
- बिक्री में कठिनाई,
- शिक्षा के स्तर में गिरावट,
- स्वास्थ्य सेवा की कमी और
- कई राज्यों में कानून–व्यवस्था की अराजक स्थिति।

इनसे निपटे बिना न गांव का विकास हो सकता है और न रोजगार मिल सकता है। जब गांव विकसित ही नहीं होंगे, रोजगार कहां से आएंगे और जब रोजगार नहीं मिलेंगे तो लोग कब तक और किस लिए गांव में रहेंगे?

बिजली आज के जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता है–केवल खेती और उद्योग के लिए ही नहीं, जीवन के हर क्षेत्र में। मगर बिजली बोर्ड सफेद हाथी हैं। केवल घाटे में चलते रहने की बात नहीं है, प्लांटों की उत्पादन क्षमता ही बहुत कम है। बिजली की चोरी बड़े पैमाने पर होती है। जरूरत से दुगुने–तिगुने लोग बहाल हैं। किसानों से बिजली कर वसूल नहीं किया जाता है या वसूल नहीं होता। गांव में एक पोल भी खड़ा कर दिया या

> मगर गांव तो एक वास्तविकता है। देश के तीन–चौथाई लोग, लगभग 5,98 लाख गांवों में सदियों से रह रहे हैं। वे देश को खाद्यान्न देते हैं; उद्योगों के लिए बहुत सारा कच्चा माल देते हैं; उन्होंने देश का अस्तित्व गांव के अस्तित्व से जुड़ा है। गांव को खुशहाली चाहिए जिसके मध्य में ग्रामीण रोजगार है।

स्कीम के अंतर्गत एक घर में एक बत्ती भी लग गई, तो उसे विद्युत–प्राप्त गांव मान लिया जाता है। विद्युत–प्राप्त गांवों की संख्या इस प्रकार बढ़ जाती है, मगर गांव–खेती और उद्योग के लिए बिना बिजली के रह जाते हैं। डीजल बहुत महंगा पड़ता है और बराबर मिलता भी नहीं।

पूंजी की कमी एक बड़ी भारी बाधा है–उन्नत खेती और लघु तथा कुटीर उद्योग सभी के लिए। रिजर्व बैंक के सारे आदेशों के बावजूद, बैंकों के रवैये में कोई बड़ा फर्क नहीं आया है। आम किसानों/उद्यमियों को जितनी पूंजी चाहिए, उसका एक अंश ही स्वीकृत करेंगे; मशीन के लिए ऋण देंगे, पर कार्यशील पूंजी इतनी कम और इतनी देर से देंगे कि उद्योग जन्म के साथ ही रुग्ण बन बैठते हैं।

परिवहन की भारी कठिनाइयां हैं। इसका सीधा असर खेती और उद्योग दोनों पर पड़ रहा है। हर जगह पक्की सड़क बनाने के लिए पैसे के अतिरिक्त पत्थर, गिट्टी, अलकतरा ही नहीं मिलेंगे। इसलिए गांव–गांव को पक्की सड़क से जोड़ने के अव्यावहारिक आग्रह को छोड़ कर, उसे मुख्य बाजार, प्रखंड मुख्यालय आदि से जल्द से जल्द जोड़ना चाहिए। सड़कों की बनावट के मापदंड ऐसे होने चाहिए कि वे निश्चित अवधि तक चल सकें; पुल–पुलिया ऐसे हों कि वे तुरंत टूट नहीं जाएं।

फैशन के दिन–दिन बदलते रहने और मशीनों में बराबर नयापन आते रहने आदि से गांव में बन रही चीजों की गुणवत्ता ऐसी होनी चाहिए कि वे बड़ी कंपनियों के बने सामानों के सामने ठहर सकें। गांव या प्रखंड स्तर के बाजार पर्याप्त नहीं होंगे। ऐसे संगठन की आवश्यकता है जो गांव में बनी, गांव की जरूरत से अधिक की चीजों को, राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय स्तरों पर बिक्री करवा सकें।

शिक्षा–व्यवस्था गांवों की ध्वस्त है। गांव में रहकर कोई रोजगार तभी करेगा जब वह अपने बच्चों के भविष्य के बारे में आश्वस्त रहे। इसलिए जोर शिक्षा के स्तर पर–मौलिक पाठ्य पुस्तकों, योग्य और प्रशिक्षित शिक्षकों, शिक्षण के लिए आवश्यक सामग्रियों (ग्लोब, चार्ट, पुस्तकालय, आदि) पर पड़ना चाहिए न कि केवल निर्माण पर। दो छोटे–छोटे कमरों में पांच कक्षाओं को चलाने की अपेक्षा (जैसा प्रायः हो रहा है) चार–पांच कच्चे–पक्के कमरों में अलग–अलग कक्षाएं चलाना अधिक व्यावहारिक और उपयोगी होगा। पक्के कमरों के लिए, ठेकेदारों का आग्रह तो कोई समझ सकता है, मगर सरकार या शिक्षाविद् इतने परेशान क्यों हों, यह एक उलझन है। टिकाऊ शिक्षा चाहिए, मात्र टिकाऊ कमरे नहीं।

यही हालत स्वास्थ्य सेवा की है। स्वास्थ्य उपकेंद्र हैं, मगर न वहां दवा रहती है, न डाक्टर। वहां पदस्थापित डाक्टर मीलों दूर रहकर निजी प्रैक्टिस करते हैं। परिवार नियोजन के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में नहीं के बराबर काम हो रहा है। राजनीतिक दलों में, वोट बैंक बनाए रखने के लिए, परिवार नियोजन के प्रति कोई उत्साह नहीं है। स्वयंसेवी संस्थाएं भी सुस्त हैं। जानकारी और सुविधा दोनों का अभाव है।

यदि सोच ठीक हो और स्थिति से निपटने का दृढ़ संकल्प हो तो इनमें कोई ऐसी बात नहीं है, जिसमें लोकहित में आवश्यक परिवर्तन

नहीं हो सकता परिवार–नियंत्रण के लिए हर वैज्ञानिक उपाय को अपनाना आज की अनिवार्यता है। उसके लिए प्राप्त सुविधाएं और उनके लिए स्थापित संस्थाएं–स्वास्थ्य उपकेन्द्र, स्वास्थ्य केंद्र, रेफरेल अस्पताल या बड़े अस्पताल यदि काम नहीं करते तो उन्हें काम करने के लिए बाध्य करना प्रशासनिक और अन्य संस्थाओं का दायित्व है।

लोकहितवादी दृष्टिकोण की जरूरत

तात्कालिक आवश्यकता है, सत्ता–संपन्न लोगों के दृष्टिकोण में परिवर्तन की। चूंकि राजनीति अभी लोकहित से दूर होकर व्यक्ति और परिवार में सिमट गई है, सामान्य लोग ही स्वस्थ जनमत द्वारा, धर्म–जाति–क्षेत्र की मानसिक कुंठाओं से अपने को मुक्त कर (जो सत्ता संपन्न लोग नहीं चाहेंगे) देश की प्रशासन–व्यवस्था में लोकोन्मुखी परिवर्तन ला सकते हैं, गांव का विकास कर सकते हैं, युवक–युवतियों का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं लोगों को जीविका के साधन उपलब्ध करा सकते हैं और उनकी खोई हुई आत्म–निर्भरता की शक्ति और आत्म–सम्मान को वापस लाकर, उन्हें देश के उत्तरदायी और सृजनशील नागरिक बनने का गौरव दे सकते हैं।

गांव की बेकारी की समस्या को सुलझाने के लिए पिछले पांच दशकों में अनेक प्रकार के प्रयोग हुए हैं और अभी भी हो रहे हैं, मगर समस्या घटने के बजाए बढ़ती जा रही है। उपचार पुराने ढंग के हैं–'काम के लिए अन्न' वाली योजना से लेकर स्वर्ण जयन्ती स्वरोजगार योजना तक। उनमें कोई मौलिक परिवर्तन नहीं हुआ है। नाम बदले हैं, नारे बदले हैं, मगर चरित्र और प्रवृत्ति समान है। सरकार दाता है, लोग याचक और लाभार्थी हैं। जब तक यह सम्बन्ध बना रहेगा समस्या भी बनी रहेगी–न गांव बनेंगे, न रोजगार मिलेगा।

यों स्कीमों की तो भरमार है। प्रत्यक्ष और स्वरोजगार की ही अनेक स्कीमें चलती रही हैं, चल रही हैं। रुपये तो बहुत खर्च हो रहे हैं। अकेले जवाहर रोजगार योजना पर 1989–90 से 1998–99 के नवंबर तक 36,826 करोड़ रुपये आवंटित किए गए और 28,892 करोड़ रुपये खर्च हुए। सुनिश्चित रोजगार योजना पर, जो 1993–94 में 1,778 प्रखंडों में शुरू हुई और 1997–98 तक देश के सभी 5,448 प्रखंडों में चालू हो गई, 14,621 करोड़ रुपये आवंटित हुए और 8,665 करोड़ रुपये खर्च हुए। तीसरी योजना 'दस लाख कुओं की योजना' के अंतर्गत 6,168 करोड़ रुपये 1988–89 से 1998 तक खर्च हुए और 12.63 लाख कुएं बने।

स्वरोजगार की बात लें तो वह चौथी पंचवर्षीय योजनाकाल से ही चल रही है। समन्वित ग्रामीण विकास योजना (आई.आर.डी.पी.) ग्रामीण महिला व बाल विकास योजना, डवाकरा, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना (ट्राइसम), 1992 से चल रही–ग्रामीण कारीगरों को उन्नत औजार आपूर्ति योजना और 1996–97 से चल रही गंगा कल्याण योजना आंकड़ों से चमत्कृत हैं। आठवीं योजना काल में ही 1.8 करोड़ परिवारों को सहायता मिली। डवाकरा के अंतर्गत छठी योजना काल

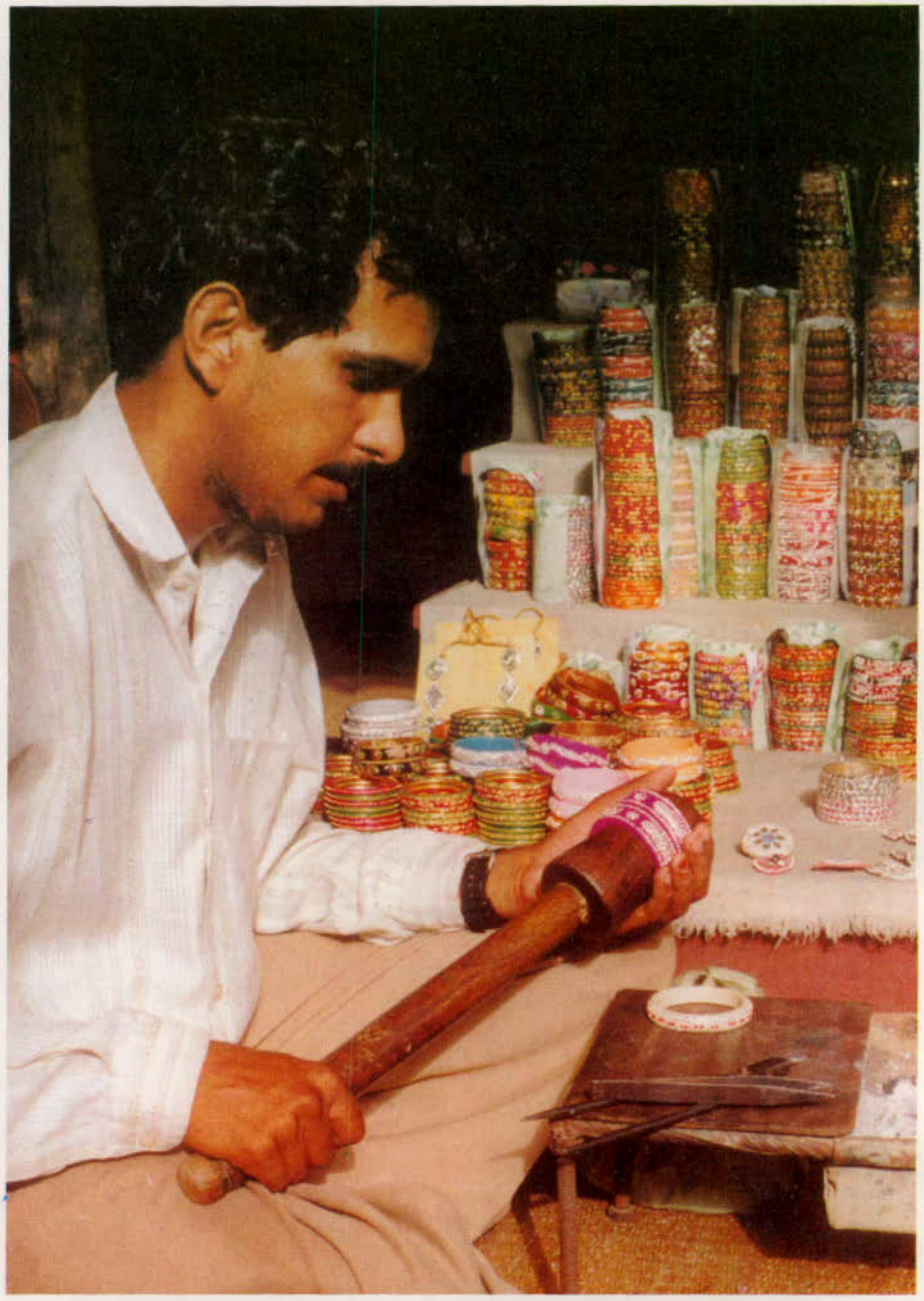

चूड़ियां बनाना भी ग्रामीण युवाओं के लिए एक उत्तम व्यवसाय है

में 3,308, सातवीं में 28,031, आठवीं में 1,41,514 और कुल मिलाकर अब तक 2,45,463 महिला समूह, 3,325 से अधिक करोड़ रुपये की सरकारी अनुदान सहायता से

इतनी बड़ी आबादी के लिए, उतने ही व्यापक रोजगार चाहिए और गांवों में रोजगार वे ही टिकाऊ होंगे जो मुख्यतः ग्रामीण संपत्ति पर आधारित होंगे।

लाभान्वित हो चुके हैं। ट्राइसम के अंतर्गत आठवीं योजना काल में 15.17 लाख युवक प्रशिक्षित किए गए और गंगा कल्याण योजना यद्यपि नई थी, फिर भी एक वर्ष 1997–98 में 566 करोड़ रुपये उस पर खर्च हो गए।

विश्लेषण के साथ अमल भी हो

एक सामान्य बेरोजगार व्यक्ति इन आंकड़ों को समझ नहीं पाता है। चारों ओर की स्थिति देखकर वह भ्रमित है। जो हजारों करोड़ रुपये रोजगार योजनाओं पर खर्च हो रहे हैं, उनमें कितने वास्तविक रूप में खर्च होते हैं और कितने का सदुपयोग होता है; जो परिसंपत्तियां बनती हैं, उनमें कितनी ठीक ढंग से और टिकाऊ बनती हैं; जो मानव–दिवस सृजित होते हैं, उनमें कितने लोगों को वास्तव में और कितने लोगों को काल्पनिक रूप में काम मिलता है, जो कुएं बनते हैं, उनमें कितने में पानी रहता है, कितने की मरम्मत होती है और जो पानी निकलता है, उसका कैसे उपयोग होता है? इच्छुक लोगों में कितने को प्रशिक्षण मिल पाता है, कितने जीविका उपार्जन और कितने सिर्फ मानदेय प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षण लेते हैं, कितने प्रशिक्षण का उपयोग करके–किसी और के लिए काम करते या स्वरोजगार में लगते हैं, इनका विश्वस्त विश्लेषण शायद ही कभी होता है। रिपोर्टें बनती हैं, छपती हैं; परिसंपत्तियां खड़ी होती हैं, गिरती हैं और इनकी पुनरावृत्ति होती रहती है।

ऊपर से नीचे तक–सभी विवश लगते हैं, अनेक छोटी–छोटी सीमाओं में बंधे हुए और रोजगार, ग्रामीण विकास, लोक कल्याण का प्रदर्शन–एक या दूसरे नाम से, नई शब्दावलियों के साथ चलता जा रहा है।

जो एक बेरोजगार समझता है, वह यह है कि सड़क चाहे जिस योजना के अंतर्गत बन रही हो, बनाता उसे कोई ठेकेदार ही है। मजदूरी उसे मिलती कुछ है और वह अंगूठा कुछ और पर लगाता है; बाजार में मजदूरी, सामान और सामान की ढुलाई की दर कुछ है और सरकारी कागजों में उसे कुछ और दिखाई जाता है; रिश्वत उसे डग–डग पर देनी पड़ती है, डग जहां भी पड़े, अनुदान के लिए, ऋण के लिए, छात्रवृत्ति पाने के लिए या स्वरोजगार के अंतर्गत कुछ लेने के लिए। टी. वी. और रेडियो वह भी देखता और सुनता है। उनकी चमक–दमक (एक से एक साबुन, जूते, जीन्स, हवा में उड़ती और पहाड़ों से कूदतीं मोटर साइकिलें और गाड़ियां) उसे भी लुभाती हैं और उसके मन को झकझोरती हैं। मगर वह बेकार है, इसलिए लाचार है। यदि काम मिला भी तो बराबर नहीं; पैसे मिले भी तो पूरे नहीं। वह आसान रास्ता ढूंढता है– गांव छोड़ देने और शहर भागने का । जिसे और भी आसान और उत्तेजक रास्ता चाहिए – वह जोर–जबर्दस्ती, छीना–झपटी, चोरी–डकैती, तस्करी–आतंकवादी गतिविधियों में लग जाता है। उसके लिए न गांव अपना है, न शहर। जिन्दगी दाव पर लगाता है और अपराध जगत के अंधकार में छलांगें लगाता है।

प्रत्यक्ष रोजगार या स्वरोजगार योजना बनती है केवल गांव में रहने वाले गरीबी रेखा के नीचे के लोगों के लिए। उसमें भी कुछ केवल अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों के लिए; कुछ में दूसरे पिछड़े वर्ग भी शामिल हैं। प्रश्न है कि जो इस रेखा के ऊपर हैं, वे क्या करें? रोजगार की जरूरत सभी परिवारों में है। ऐसी स्थिति में गांव में हर कोई चाहने लगता है कि वह रहे भले ही रेखा के ऊपर, मगर नाम रहे उसका रेखा के नीचे। इसलिए, गांव में तू–तू, मैं–मैं, छीना–झपटी का वातावरण बनता जाता है।

एक ही तरह के काम के लिए थोड़े–थोड़े हेरफेर करके स्कीमों के जमघट लगाने से कोई फायदा नहीं होता सिवा गिनती कराने के लिए इतनी स्कीमें चल रही हैं। नुकसान यह है कि लोग भ्रमित हो जाते हैं, हिसाब–किताब रखना मुश्किल हो जाता है और पर्यवेक्षण/निरीक्षण में कठिनाई होती है। इस दृष्टि से स्कीमों की संख्या घटाई गई और उन्हें एकीकृत रूप दिया गया। यह तो अच्छा हुआ–एक स्कीम मुख्यतः परिसंपत्तियों के निर्माण के लिए और दूसरी स्वरोजगार के लिए। मगर क्या इससे कोई मौलिक परिवर्तन होगा? अनुदान की राशि कुछ बढ़ गई, ग्राम सभा की भूमिका थोड़ी बदली–मगर शेष बातें तो मूलतः वैसी ही रह गईं, जैसी पहले थीं।

परियोजनाएं बनेंगी कैसे? ग्राम, प्रखंड या जिले में उपलब्ध साधनों की क्या कोई विश्वसनीय सूचना है? उनके आधार पर क्या कोई ग्राम, प्रखंड या जिला योजना बनी है? परियोजनाओं के निर्माण में आम लोगों की क्या कोई भूमिका है? प्रखंड स्तर पर क्या पर्याप्त तकनीकी ज्ञान या तकनीकी पदाधिकारी उपलब्ध हैं? ग्राम, प्रखंड और डी.आर.डी.ए. में समन्वय कौन करेगा और कैसे होगा? डी. आर.डी.ए. का अलग अस्तित्व होने से क्या उसमें और जिला परिषद में सम्यक समन्वय हो सकेगा? ऐसे अनेक प्रश्न उठते हैं। ऋण–सह–अनुदान की प्रणाली ने बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार और साधनों का दुरूपयोग बढ़ाया। वही प्रणाली अभी भी है। स्वर्ण जयंती

जब गांव विकसित ही नहीं होंगे, रोजगार कहां से आएंगे और जब रोजगार नहीं मिलेंगे तो लोग कब तक और किस लिए गांव में रहेंगे?

स्वरोजगार योजना में सामूहिक रोजगारों पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया है। इसे गलत रूप में देखने की पूरी आशंका है कि योजना के अंतर्गत केवल सामूहिक स्कीमें ही ली जाएंगी। प्रखंड स्तर के पदाधिकारी अनेक स्थानों पर इसे इसी रूप में देख रहे हैं। यदि ऐसा हुआ तो योजना फिसल जायेगी। अभी तो नई योजना प्रारंभिक अवस्था में ही है – मगर जिस रूप में वह है उससे कोई बड़ी आशा नहीं बंधती है।

मुख्य प्रश्न व्यवस्था का है

ग्रामीण जीवन के संबंध में, लोगों के रोजगार और भविष्य के बारे में सब कुछ का निर्णय क्या सरकार ही लेगी या निर्णय की प्रक्रिया में आम लोग भी शामिल होंगे? पुरानी रोजगार योजनाओं को नया रूप देने में लोगों की क्या सहभागिता होगी? ग्रामीण लोगों को भी अपनी जिंदगी, अपने वातावरण, अपनी आवश्यकता और क्षमता की जानकारी है। वे भी निर्णय–प्रक्रिया में शामिल होने के लायक हैं। अतएव, प्रश्न ग्रामीण विकास का हो या गरीबी उन्मूलन या उसे कम करने या मात्र ग्रामीण रोजगार का, प्रभावकारी प्रयास और सफलता की पहली शर्त यह है कि सरकार अपनी भूमिका सीमित करे।

केन्द्र और राज्य सरकारों के पास सूचनाओं के भंडार हैं। दोनों के बीच सूचनाओं के संग्रह और उनके उपयोग के लिए उचित समन्वय नहीं है – यह दूसरी बात है। लोगों को अपनी आवश्यकताओं का ज्ञान है; बेकारी और अभाव की पीड़ा तो वे भोग ही रहे हैं; वे छटपटाहट में हैं कि मुक्ति का कोई रास्ता मिले। मगर रास्ता ढूंढ नहीं पाते कि क्या करें और कैसे करें। सरकार की मदद यह होनी चाहिए कि लोगों को सूचनाएं उपलब्ध रहें कि अभी देश के विभिन्न भागों में लघु और कुटीर उद्योग या हस्तशिल्प की क्या–क्या संभावनाएं है; विभिन्न क्षेत्रों में क्या–क्या तकनीक उपलब्ध है जिनका प्रयोग ग्रामीण क्षेत्रों में उत्पादन बढ़ाने और उनकी गुणवत्ता बढ़ाने में करना चाहिए; किन–किन विषयों में, प्रशिक्षण के किस–किस स्तर की क्या सुविधाएं उपलब्ध हैं; बिक्री के लिए, गांव और प्रखंड के बाहर (विदेश सहित) क्या–क्या व्यवस्था है, आदि। सूचनाएं हिंदी और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध कराई जानी चाहिए और उनका व्यापक प्रचार होना चाहिए।

ऋण–सह–अनुदान के चलते, बहुत फर्जी काम हो रहे हैं। मुख्य उद्देश्य किसी तरह अनुदान ले लेना होता है। अनुभव और सामयिक वास्तविकताओं की मांग है कि अनुदान की सस्ती तथाकथित लोकप्रिय व्यवस्था पूरी तरह समाप्त कर दी जाए। पूरी राशि ऋण के रूप में–लंबे समय के लिए और कम सूद पर दी जाए। अनुसूचित जाति–जनजाति के लोगों से कोई सूद नहीं लिया जाए। रोजगार के अवसर सबको मिलें, चाहे वे गरीबी रेखा के ऊपर हों या नीचे। रेखा के नीचे वालों को प्राथमिकता अवश्य दी जाए। प्रत्यक्ष या स्वरोजगार में कोटा बांध देने से गलत आंकड़े बनाए जा रहे हैं। महिलाओं/विकलांगों को प्राथमिकता दी जाए–उनके लिए कोटा नहीं बांधा जाएं। उत्पादन और रोजगार बढ़ाने के लिए ऋण की सुविधा सबको मिले और मुफ्त बिजली–पानी किसी को नहीं। इस नीति ने सरकार को खोखला और पराश्रित बना दिया है। ऐसा मानना है कि अनुदान या कोटा हटा देने से लोगों में असंतोष बढ़ जायेगा, वास्तविकताओं से मुंह मोड़ना है। लोग परेशान हैं – प्रक्रियाओं की जटिलता, ऋण–राशि की कमी और उनके मिलने में देरी, रिश्वतखोरी, फर्जी काम, आदि से। यदि आवश्यकता के अनुरूप ऋण मिलने लगे, सूद कम हो, अदायगी में आसानी हो, प्रक्रिया सरल हो तो लोग इन बंधनो के हटाये जाने का स्वागत करेंगे।

परंपरागत उद्योगों को बढ़ावा मिलना चाहिए

आवश्यकता नेतृत्व की है, नारों की नहीं; व्यवस्था में बदलाव की, बंधनों की नहीं। गांव में रोजगार बढ़ाने के लिए, खेती में गहनता लाने के साथ ही, विविधता भी अत्यावश्यक है। निर्यात की दृष्टि से फूलों की खेती, जहां भी जलवायु अनुकूल हो, बड़े पैमाने पर बढ़ाई जा सकती है। सब्जियों और फलों के उत्पादन में और वृद्धि कर निर्यात द्वारा लोगों की आमदनी बढ़ाई जा सकती है। सूखे क्षेत्र में अनुकूल बीज उपलब्ध कराकर वहां खेती बढ़ाई जा सकती है। पशु–पालन, मत्स्य पालन आदि में रोजगार बढ़ाने की बड़ी गुंजाइश है।

असामयिक वर्षा, ओले–पत्थर, बाढ़–कटाव से फसलों की भारी बर्बादी होती है। फसल–बीमा योजना पूरे देश में और जल्द से जल्द लागू होनी चाहिए।

मगर खेती की पैदावार यदि पूरी भी बढ़ जाए, मात्र खेती से काम चलेगा नहीं। कपड़ा बनाना, तेल तैयार करना, खेती के काम में आने वाले औजारों को बनाना, चमड़े का काम करना, जेवर बनाने का काम, आदि अनेक प्रकार के गृह–उद्योग परंपरागत रूप में गांवों में होते रहे हैं। इससे गांव के लोगों को पूर्णकालीन या अंशकालीन काम मिलते रहे हैं। आज के परिप्रेक्ष्य में यह विचारने की जरूरत है कि इन कामों को कैसे संगठित करें वे गांवों में पूर्णवत होते रहें। साथ ही आधुनिक जीवन के अनुकूल और क्या–क्या व्यवसाय ढूढें जो गांवों में चल सकें। कुछ व्यवसाय के लिए सामान्य ज्ञान से ही काम चल जाएगा, कुछ के लिए विशेष प्रकार की कुशलता चाहिए। प्रशिक्षण, नया तकनीक पूंजी–सबकी आवश्यकता होगी।

बदलती हुई जीवन–शैली में 'सर्विस सेक्टर' का महत्व बड़ा बढ़ा है। टेलिफोन की सुविधा काफी बढ़ी है और आशा है कुछ ही दिनों में वह सर्वत्र उपलब्ध होगी। चाय–पान की दुकान, खाने के लिए ढ़ाबा, दवाई की दुकान, कपड़ा धोने के काम, बाल काटना, मनोरंजन और अभी प्रायः सबसे अधिक बच्चों की पढ़ाई – गांव के लिए व्यवसाय के नये द्वार खोल सकते हैं।

मशीन का उपयोग जितना बढ़ेगा, मशीनों के रख–रखाव और उनकी मरम्मत के लिए प्रबंध उतने ही बढ़ते जायेंगे। सुख–सुविधा और मनोरंजन का क्षेत्र जितना बढ़ेगा, उस क्षेत्र में काम भी उतना ही बढ़ेगा। मनोरंजन का क्षेत्र पहले भी रोजगार का एक साधन था – कीर्तन, जादू, नाटक, बाजा, नाच आदि से ग्रामीण कलाकार केवल आजीविका ही नहीं, नाम और सम्मान भी प्राप्त करते थे। समय के अनुसार नये तरीकों का प्रयोग कर उन्हें और आकर्षक तथा लोकप्रिय बनाया जा सकता है।

ग्रामीण उद्योगों के लिए बहुत बड़ा बाजार गांव स्वयं है। गांव की आवश्यकताएं विभिन्न प्रकार की हैं– खेती के औजार, खाद, अन्न रखने के लिए विभिन्न प्रकार के सामान; दूध से घी, मक्खन, मिठाई; चमड़े से अनेक प्रकार के सामान; लकड़ी, बांस और बेंत से बने दिन–प्रति–दिन के प्रयोग में आने वाले नाना प्रकार के सामान; और ऊनी कपड़े आदि

जैसी उपयोगी चीजें गांव में बन सकती हैं और खप सकती है और उनसे बड़े पैमाने पर रोजगार मिल सकता हैं।

मानसिक–शारीरिक श्रम में भेदभाव

शारीरिक श्रम से होने वाले रोजगार में एक बड़ी बाधा है, पढ़े–लिखे लोगों की मानसिक कुंठा। वर्ण–व्यवस्था से उपजी यह एक अप–सांस्कृतिक विरासत है। मानसिक कार्य एक करे और शारीरिक कार्य दूसरा; मानसिक कार्य ऊंचा है और शारीरिक कार्य नीचा, सदियों से आ रही इस विकृत मानसिकता ने भारतीय जीवन को क्षत–विक्षत किया है। न केवल रोजगार पाने के लिए, बल्कि जीवन के प्रत्येक क्रियाकलाप में इस सत्य को स्वीकार करना कि निष्ठापूर्वक किया गया शारीरिक और मानसिक कार्य समान रूप से सम्माननीय है, राष्ट्रीय जीवन के विकास की अनिवार्य शर्त है। यह बौद्धिक–भावनात्मक–सांस्कृतिक परिमार्जन घर से ही और बचपन से ही प्रारंभ करना होगा जिसकी परिणति श्रम की समान स्वीकृति में होनी चाहिए और वह जीवन के हर पक्ष में झलकनी चाहिए। ऐसा होने पर ट्रैक्टर चलाने में, बाग लगाने में, पशु–पालन में, चर्म–कार्य में या इस प्रकार के अनेकानेक उपयोगी कार्यों को करने में पढ़ा–लिखा वर्ग अपने को लज्जित या हीन नहीं समझेगा। इससे ग्रामीण रोजगार के अवसर बहुत बढ़ेंगे।

स्कूल कालेज के पाठ्यक्रमों और अन्य क्रियाकलापों द्वारा शारीरिक श्रम की महत्ता युवक/युवतियों के चिंतन और उनकी विचारधारा में प्रतिष्ठित की जाए, इसकी नितांत आवश्यकता है। आठवीं कक्षा के बाद व्यावसायिक शिक्षा एक अनिवार्य विषय होना चाहिए और दसवीं के बाद, ऐसे विद्यार्थियों को छोड़कर, जिन्हें अनुसंधान, शोध, अध्यापन–लेखन आदि जैसे कार्यों में जाने की अभिरुचि और योग्यता हो, शेष को व्यावसायिक शिक्षा में ही जाना चाहिए। नई सामाजिक रचना ऐसी हो जिसमें व्यावसायिक शिक्षा और उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों के बीच सामाजिक स्तर पर पूर्ण समता हो।

यह सब संभव है और किया जा सकता है। केवल नेतृत्व चाहिए। सामाजिक–सांस्कृतिक परिवर्तन में धर्माचार्यों, चिन्तकों, बुद्धिजीवियों की बड़ी भूमिका होती है। मगर आज की स्थिति में प्रायः सब पर राजनीति हावी है और राजनीति लोकहित को छोड़कर स्वार्थ–हित में बंधी है। आज की स्थिति में, राजनीतिक दलों से कोई उम्मीद नहीं की जा सकती। वे कुछ व्यक्तियों की मुट्ठियों में बंद हैं। अधिकांश गैर–सरकारी संस्थाएं साधन के लिए देशी/विदेशी सरकारों पर आश्रित हैं। आम आदमी का विश्वास सबसे उठ गया है। ऐसे में नेतृत्व बाहर से या ऊपर से आ नहीं सकता। नेतृत्व को आम लोगों के बीच से ही आना है। लोग लाचारी और निःसहाय स्थिति से उठें और जनतांत्रिक व्यवस्था में अपनी भूमिका समझें, तभी कुछ हो सकता है। स्वस्थ और संगठित जनमत सरकार और प्रशासन को लोकोन्मुखी होने के लिए प्रेरित और बाध्य कर सकता है।

देश की प्रगति का आधार गांव

पंचायतें इसमें सार्थक भूमिका निभा सकती हैं। विभिन्न राज्यों के पंचायत अधिनियमों में कृषि, कुटीर उद्योग, सामाजिक वानिकी, प्राथमिक शिक्षा, स्वास्थ्य आदि के क्षेत्रों में ग्राम और दूसरी पंचायतों को अधिकार और दायित्व दिये गए हैं। ग्राम–सभा सभी राज्यों में हैं और पांचवीं अनुसूची के अनुसूचित क्षेत्रों में उन्हें विकास योजनाओं के निर्माण और स्वीकृति और कार्यान्वयन और अनुश्रवण के व्यापक अधिकार दिये गये हैं। इससे गांव के लोगों को अपने विकास का अभूतपूर्व अवसर प्राप्त हुआ है। मगर इनके बावजूद केन्द्र और राज्य सरकारों की भूमिका तो बरकरार है ही। उनकी आर्थिक–सामाजिक नीतियां विकास के सारे कार्यक्रमों को प्रभावित करेंगी। अतएव, उनकी नीतियों का सकारात्मक और ग्रामोन्मुखी तथा जनोन्मुखी होना ग्रामीण रोजगार के विकास की अनिवार्य शर्त है।

केन्द्र और राज्य सरकार की नीतियों को जनमत द्वारा ग्रामोन्मुखी बनाया जा सकता है और इसमें ग्राम–सभाओं की भूमिका अहम होगी। स्वयंसेवी संस्थाएं और गांव का युवा–वर्ग ग्राम–विकास के प्रबल माध्यम बन सकते हैं।

नई सदी की एक बड़ी चुनौती गांव को बचाना और बढ़ाना है। गांव को बचाने के लिए गांव में रोजगार चाहिए, देश को बढ़ाने के लिए, गांव को बनाना चाहिए। आंतरिक शक्ति ही किसी भी व्यक्ति, समाज या राष्ट्र को सम्मान के साथ जीने का बल देती है। गांव देश के शक्ति–स्रोत हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों की पृष्ठभूमि में, वहां रोजगार के अवसर को बढ़ाकर, गांवों को आत्मनिर्भर और उन्नत बनाना नई सदी में देश की प्रगति के लिए आधार शिला का काम करेगा। राष्ट्र–हित में और कोई विकल्प नहीं है। ❑

विशिष्ट महिला पंचायत प्रतिनिधि पुरस्कार

इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज
8, नेलसन मंडेला रोड, वसन्त कुंज
नयी दिल्ली–110 070, दूरभाष : 6137027

24 अप्रैल 2000 को **महिला सशक्तीकरण दिवस समारोह दिल्ली, बंगलूर, चेन्नई तथा भुवनेश्वर** में मनाया जायेगा।

विशिष्ट महिला पंचायत प्रतिनिधि पुरस्कारों के लिए नामांकन आमंत्रित हैं। ये पुरस्कार महिला पंचायत प्रतिनिधियों को सार्वजनिक जीवन की समृद्धि एवं पंचायतों के विकास में उनके योगदान के लिए दिये जाते हैं। इस संबंध में विस्तृत जानकारी के लिए कृपया डॉ. बिद्युत मोहन्ती, इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज, नयी दिल्ली से संपर्क करें।

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या और उससे

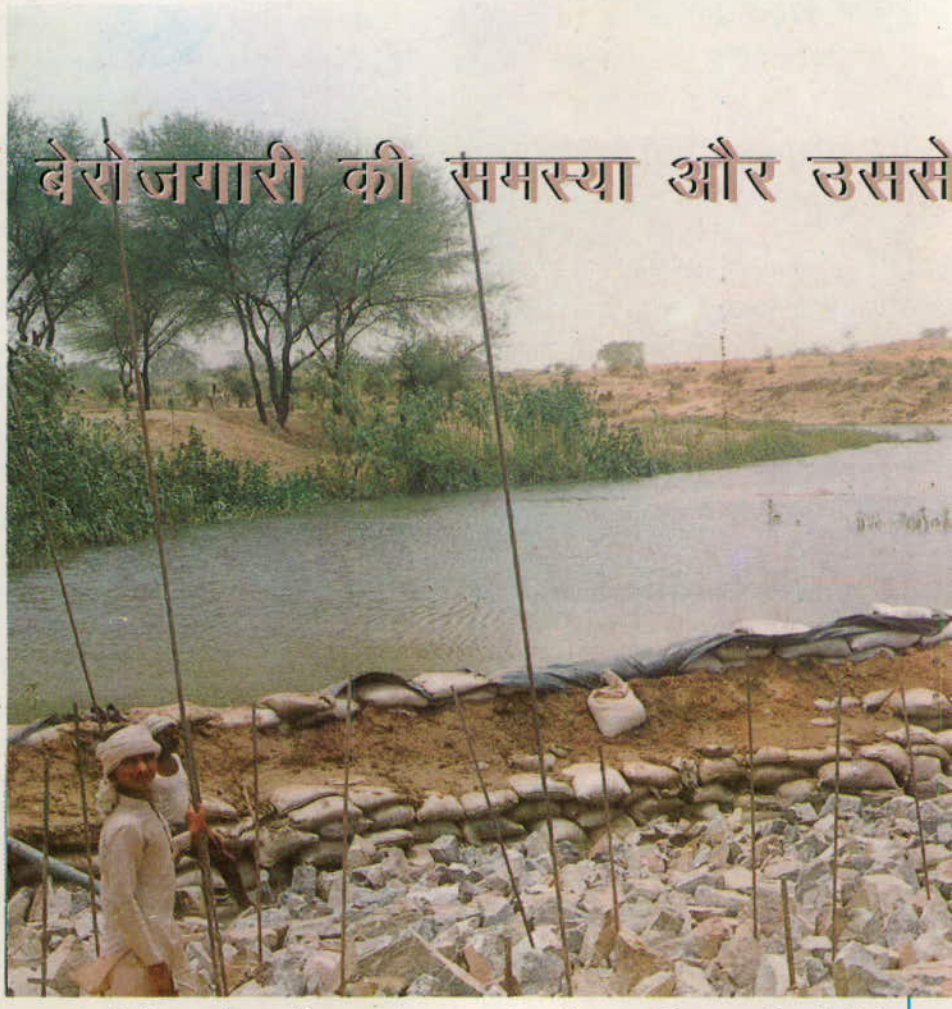

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी बड़ा विकराल रूप धारण किए हुए है। बड़े पैमाने पर मजदूरों का शहरों की ओर पलायन जारी है। इसके कारणों में सबसे प्रमुख तो बढ़ती हुई जनसंख्या है। इसके अलावा गांवों में कृषि के अलावा रोजगार के अन्य साधन नहीं है। लघु और कुटीर उद्योग नहीं लगाए गए हैं। संयुक्त परिवार प्रथा समाप्त होने से जोतों का बंटवारा हो रहा है। ग्रामीणों में व्याप्त अशिक्षा के कारण वे अंधविश्वास और रूढ़ियों की वजह से ऋण लेकर फिजूल खर्ची करते हैं और अपनी समस्याओं में इजाफा करते हैं। सरकार अनेक विकास योजनाएं चलाकर समस्या से जूझने का प्रयास कर रही है। लेकिन इनमें तभी सफलता मिल सकती है जब इन योजनाओं के कार्यान्वयन में पारदर्शिता हो, भ्रष्टाचार न हो और योजनाओं को लागू करने में जनता का सहयोग प्राप्त हो।

आजादी के 52 वर्ष बाद भी भारत के गांवों की स्थिति में कोई सुधार नहीं आया है। गांवों मे जो लोग रहते हैं उनमें से अधिकतर लोग भूमिहीन हैं और उनमें बेरोजगारी की समस्या दिनों–दिन विकराल रूप धारण कर रही है। यही कारण है कि रोजगार की खोज में बहुत बड़े पैमाने पर गांवों के मजदूर प्रतिदिन बड़े–बड़े शहरों की ओर दौड़ रहे हैं। पलायन की यह रफ्तार बढ़ती ही जा रही है।

सबसे बड़ा कारण जनसंख्या

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार श्रमिकों की संख्या क्यों बढ़ी, इसके अनेक कारण हैं। सबसे बड़ा कारण यह है कि 1921 के बाद ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या बहुत तेजी से बढ़ी है। इस अवधि में गांवों में आर्थिक विकास नगण्य रहा और जो विकास हुआ भी उसे बढ़ती हुई जनसंख्या ने डकार लिया। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि के अलावा कभी भी रोजगार के कोई दूसरे साधन नहीं रहे। बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण कृषि पर बोझ बहुत बढ़ गया। उदाहरण के लिए जहां पर 10 मजदूर काम करते थे वहां 100 मजदूर उसी काम को करने लगे। स्वाभाविक रूप से उन्हें मजदूरी कम मिलने लगी। उनमें भूखमरी की समस्या बढ़ती गई और रोजगार की खोज में वे भटक कर शहरों की ओर तेजी से आने लगे। शहरों में उन्हे घोर अपमान और अभाव का जीवन जीना पड़ा। उस पर भी दुख की बात यह रही कि उन्हें रोजगार के अवसर कम मिले और जो मिले भी उसमें मजदूरी ठीक ठाक नहीं मिल पाई। जिन लोगों ने उन्हें रोजगार दिया उन्होंने उनका भरपूर शोषण किया। जनसंख्या की वृद्धि तो आजादी के बाद और भी अधिक तेज हो गई। सरकार ने अब नई जनसंख्या नीति की घोषणा की है। अभी यह

* पूर्व सांसद और पूर्व राजदूत

निपटने के उपाय

डा. गौरीशंकर राजहंस*

कहना कठिन है कि इस नीति के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या की तेजी से हो रही बढ़ोतरी रुक पाएगी अथवा नहीं। इसका सबसे प्रमुख कारण यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अशिक्षा के कारण लोग परिवार नियोजन के महत्व को समझते ही नहीं हैं। उनमें एक गलत धारणा है कि जितने बच्चे पैदा होंगे उतने ही कमाने वाले हाथ तैयार हो जाएंगे और घर में समृद्धि आएगी। वे यह सोच ही नहीं पाते हैं कि परिवार में अधिक बच्चों के जन्म के कारण वे अनजाने में गरीबी को निमंत्रण दे रहे हैं। उससे भी अधिक दुख की बात है कि ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर महिलाएं, खासकर वे महिलाएं जो श्रमिकों का काम कर रही हैं, उनमें शिक्षा नाममात्र की भी नहीं है। बाहरी दुनिया से उनका कोई संपर्क नहीं है। परिवार को सीमित करने में उनका कोई दखल नहीं है। यह सिलसिला पिछले पचास वर्षों से चल रहा है और पता नहीं आगे कितने वर्षों तक चलता रहेगा। अतः ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को चाहे जितनी भी रोजगार प्राप्ति के अवसर दिलाए जाएं जब तक जनसंख्या पर कड़ा नियंत्रण नहीं होगा, बेरोजगारी की समस्या काबू में नहीं आएगी। रोजगार दिलाने की किसी भी योजना पर विचार करने से पहले सरकार और स्वयंसेवी संस्थाओं को जनसंख्या के नियंत्रण पर ध्यान देना चाहिए। ग्रामीण क्षेत्रों में रहने वाले अधिकतर लोग अंधविश्वास के शिकार हैं। उनमें यह गलतफहमी है कि बच्चे भगवान की देन हैं और इसी कारण परिवार को सीमित करने के लिए वे कोई प्रयास नहीं करते हैं। यही नहीं, उनमें एक और गलत धारणा भी है कि यदि परिवार में लड़कों का जन्म नहीं होगा तो वंश आगे नहीं बढ़ेगा। इसी कारण एक लड़के की चाह में कभी–कभी वे आठ दस लड़कियों को जन्म दे डालते हैं। यह एक अत्यन्त ही विकराल समस्या है। और चाहे रोजगार बढ़ाने के लिए जितनी भी योजनाएं बनाई जाएं, उनका परिणाम तब तक संतोषजनक नहीं निकलेगा जब तक बच्चों के जन्म पर कड़ा नियंत्रण न किया जाए। अधिक से अधिक बच्चों का जन्म परिवार में गरीबी तो लाता ही है, माताओं के स्वास्थ्य पर भी इसका बहुत ही बुरा असर पड़ता है और गांवों में तो वैसे भी चिकित्सा की कोई सुविधा प्राप्त नहीं है। समय आ गया है जब नई सहस्त्राब्दी में जो लोग ग्रामीण क्षेत्रों से बेरोजगारी दूर करने का सपना देखते हैं वे सबसे अधिक जोर जनसंख्या के नियंत्रण पर दें।

लघु उद्योगों को प्रोत्साहन नहीं

जब अंग्रेज भारत में आए तब उन्होंने ग्रामीण क्षेत्र के मजदूरों को पंगु करने के लिए भारत में कुटीर उद्योग को लुप्तप्राय करा दिया। देश में बड़े शहरों में बड़े–बड़े करखाने लगाए गए जिस कारण गांव के मजदूर भाग कर शहर आ गए। आजादी के बाद भी किसी सरकार ने लघु और कुटीर उद्योगों का पुनर्जीवित करने का भरपूर प्रयास नहीं किया। लघु और कुटीर उद्योग इस कारण भी नहीं पनप सके कि तैयार मालों का बाजार उन्हें नहीं मिलता था। सरकार ने आधे मन से लघु और कुटीर उद्योगों में तैयार माल को खरीदने का प्रयास किया या जो कुछ प्रोत्साहन उन्हें दिया। उसमें कोई जोशखरोश नहीं था और न कोई ठोस योजना थी। इस कारण लघु और कुटीर उद्योगों क्षेत्रों में रहने वाले मजदूर भी बहुत बड़ी संख्या में बेरोजगार हो गए।

आजादी के बाद जब जमींदारी प्रथा का उन्मूलन हुआ, जब जो लोग बड़े जमींदार थे उन्होंने उन लोगों को जमीन की खेती से बेदखल कर दिया जो बटाईदारी प्रथा के अन्दर खेती करते थे। इन बड़े जमींदारों ने यह कहना शुरू कर दिया कि जमीन को अब वे स्वयं जोतेंगे और बोएंगे, अब उन्हें बटाई पर किसी को जमीन देने की आवश्यकता नहीं है। इसका यह परिणाम हुआ कि जो लोग खेती में लगे हुए थे वे रातों रात खेतिहर मजदूर बन गए और जब गांवों में उन्हें रोजगार मिलना बंद हो गया तो वे तेजी से शहरों की ओर पलायन करने लगे।

ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर महिलाएं, खासकर वे महिलाएं जो श्रमिकों का काम कर रही हैं, उनमें शिक्षा नाममात्र का भी नहीं है। बाहरी दुनिया से उनका कोई संपर्क नहीं है। परिवार को सीमित करने में उनका कोई दखल नहीं है। यह सिलसिला पिछले पचास वर्षों से चल रहा है और पता नहीं आगे कितने वर्षों तक चलता रहेगा।

जोतों का बटवारा

जैसे–जैसे ग्रामीण संयुक्त परिवार की प्रथा समाप्त होने लगी, और परिवार के सदस्यों में वृद्धि होने लगी, गांव की जमीन पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने लगा। पहले जो जमीन का एक बड़ा टुकड़ा था वह संयुक्त परिवार के छिन्न भिन्न हो जाने के कारण और आपस के बंटवारे के कारण छोटे–छोटे टुकड़ों में बंट गया जिस पर खेती करने के कोई लाभ नहीं होने लगा। नतीजा यह हुआ कि गांवों में

बेरोजगार श्रमिकों की संख्या तेजी से बढ़ने लगी।

अंधविश्वास और रूढ़ियां

अब यह देश के सभी प्रसिद्ध अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकार किया जा रहा है कि गांवों में बढ़ते हुए ऋण के कारण खेतिहर मजदूरों की संख्या में वृद्धि हुई और उनमें बेरोजगारी की समस्या भी तेजी से बढ़ी है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है गांवों में अधिकतर लोग अंधविश्वास में जीते हैं। वे रूढ़िवादी हैं, सामाजिक बुराइयों से ऊपर नहीं उठने के कारण वे दिनों दिन गरीब होते जा रहे हैं। ऐसे लोग जो एक–दो पीढ़ी पहले संपन्न किसान थे, आज खेतिहर मजदूर का काम कर रहे हैं और उस पर भी उन्हें साल में छः महीने ही रोजगार मिल पाता है।

> अधिक से अधिक बच्चों का जन्म परिवार में गरीबी तो लाता ही है, माताओं के स्वास्थ्य पर भी इसका बहुत ही बुरा असर पड़ता है और गावों में तो वैसे भी चिकित्सा की कोई सुविधा प्राप्त नहीं है। समय आ गया है जब नई सहस्त्राब्दी में जो लोग ग्रामीण क्षेत्रों से बेरोजगारी दूर करने का सपना देखते हैं वे सबसे अधिक जोर जनसंख्या के नियंत्रण पर दें।

गांवों में अक्सर दिखावे के लिए या समाज के दबाव के कारण शादी विवाह, जनेऊ या श्राद्ध आदि अवसरों पर गरीब किसानों को अपनी जमीन महाजनों के हाथ बेच देनी पड़ती है या गिरवी रख देनी पड़ती है। ये महाजन बहुत ऊंची दरों पर इन गरीब और छोटे किसानों को ऋण देते हैं। हर वर्ष ब्याज दर बढ़ने के कारण वे इन महाजनों के चंगुल से नहीं निकल पाते हैं। नतीजा यह होता है कि ऐसे लोग जो कभी सुखी ओर समृद्ध थे उन्हें अपनी जमीन से हाथ धोना पड़ता है। धीरे–धीरे वे कृषि मजदूर बन जाते हैं और उस पर भी दुर्भाग्य की बात यह है कि उन्हें साल भर रोजगार नहीं मिल पाता है। जब तक समाज की ये कुरीतियां दूर नहीं होंगी तब तक ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमिकों की संख्या में कमी नहीं आएगी और वहां बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं होगा।

बेरोजगारी के तीन प्रकार

अब यह निर्विवाद रूप से माना जाने लगा है कि ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती हुई बेरोजगारी तीन प्रकार की होती है। एक तो वह जो साल में चार छः महीनों तक रहती है, दूसरी वह जो दिखाई नहीं पड़ती है और तीसरी वह जो गंभीर रूप से पूरे ग्रामीण समाज में व्याप्त है।

पूरे भारत में केवल 35 प्रतिशत कृषि योग्य जमीन में सिंचाई होती है। जिसका अर्थ है दो या दो से अधिक फसल बहुत कम जमीन पर ही उपजाई जा सकती है। दूसरे शब्दों में जो मजदूर कृषि में लगे हुए हैं उन्हें चार से छः महीनों तक कोई रोजगार नहीं मिलता है। इस तरह मौसमी बेरोजगारी ग्रामीण क्षेत्रों में तेजी से बढ़ती जा रही है। प्रथम और द्वितीय "एग्रीकल्चरल लेबर इनक्वायरी कमेटी" ने भी यह माना कि चार से छः महीनों तक ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकतर मजदूर बेरोजगार रहते हैं और ज्यों–ज्यों समय बीतता जा रहा है इन बेरोजगार मजदूरों की संख्या में वृद्धि ही हो रही है।

इसके आलावा ऐसे भी बेरोजगार मजदूर हैं जो ऊपर से बेरोजगार दिखाई नहीं पड़ते हैं। उदाहरण के लिए जमीन के जिस टुकड़े पर चार मजदूरों से काम चल सकता है, वहां पर दस या 12 मजदूर काम करते हैं। जाहिर है कि 8 मजदूर बेरोजगार हैं जो ऊपर से देखने में बेरोजगार नहीं दिखाई पड़ते हैं।

हाल के वर्षों में पंजाब, हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में एक प्रवृत्ति देखी गई कि बड़े किसान सैकड़ों एकड़ जमीन पर मशीन से खेती करते हैं वे ट्रेक्टर का, गहरे पंप का और फसल काटने वाली मशीनों का उपयोग करते हैं जिसका परिणाम यह हुआ है कि इन क्षेत्रों में हाथ से काम करने वाले मजदूर बेरोजगार हो गए हैं। यह समस्या दिनों दिन बढ़ती ही जा रही है।

सरकार का सकारात्मक प्रयास

सरकार ने समय–समय पर ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर बढ़ाने के उपाय किए जिनमें प्रमुख योजनाएं थी 'एनआरईपी', 'आरएलईजीपी', 'आईआरडीपी' आदि। 'एनआरईपी' योजना के अंतर्गत उन ग्रामीण क्षेत्र के मजदूरों की मदद की गई थी और उनके लिए रोजगार के अवसर खोजे गए थे जो उन महीनों में बेकार रहते थे जब कि ग्रामीण क्षेत्रों में कोई खेतीबाड़ी का काम नहीं होता था। इस योजना के अन्दर जो खर्च आता था वह आधा–आधा केन्द्र सरकार और राज्य सरकार वहन करती थीं। इस योजना के अन्तर्गत हर जिले में ऐसे लोगों की सूची तैयार की जाती थी जो इस तरह कि योजना से लाभ उठाएंगे। परन्तु बाद के अनुभवों ने दिखाया कि जिले के अधिकांश प्रखण्डों में तकनीकी दृष्टिकोण से प्रशिक्षित विशेषज्ञों की कमी थी जो इन योजनाओं के कार्यान्वयन में मदद करते। योजना आयोग के अनुसार सरकार चाहती थी कि इस योजना के अन्तर्गत गांवों में जंगल लगाए जाएं, चारगाह तैयार

> इसमें कोई संदेह नहीं कि 'स्वर्ण जयन्ती स्वरोजगार योजना' अपने आप में एक बहुत ही महत्वपूर्ण योजना है। और यदि ठीक ढंग से इसका कार्यान्वयन किया गया तो गांवों में रहने वाले गरीबों, खासकर कृषि मजदूरों को इससे बहुत लाभ होगा।

किए जाएं, संसाधनों का रख–रखाव किया जाए, सिंचाई की व्यवस्था हो, गांवों की बाढ़ से सुरक्षा हो, गांव से बाढ़ का पानी निकालने का प्रबंध हो। गांवों में बड़े–बड़े तालाब बनाए जाएं और स्कूल तथा अस्पताल के भवन तैयार किए जाएं। लोगों में स्वच्छ जीवन बिताने की आदत डाली जाए और उनमें यह विश्वास पैदा किया जाए कि समय आने पर उन्हें सारी चिकित्सा प्रखंड स्तर पर ही प्राप्त हो जाएगी।

जब इस योजना का कार्यान्वयन हुआ तब लोगों ने पाया कि जबरर्दस्त भ्रष्टाचार के कारण इसका लाभ गांवों के गरीब मजदूरों तक नहीं पहुंच पाया। बेईमान लोगों ने केवल कागजों पर सड़कें बनाईं या स्कूल और अस्पताल की इमारतें बनाईं। बाद में कह दिया कि घोर बारिश या बाढ़ के कारण वे सड़कें टूट गई या मकान बह गए। इन अनुभवों से लाभ उठाकर 'आरएलईजीपी' योजना बनाई गई, जो पहली अप्रैल 1989 तक चली, जब इसे बदल कर 'जवाहर रोजगार योजना' में तबदील कर दिया गया। उम्मीद की जाती थी कि इस योजना के तहत करोड़ों लोगों को रोजगार मिलेगा। परन्तु ऐसा कुछ नहीं हो पाया।

1989 में ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी को दूर करने के लिए सरकार ने *जवाहर रोजगार योजना* बनाई। उस समय सोचा गया कि 'एनआरईपी' और 'आरएलईजीपी' रोजगार योजनाओं की कोई आवश्यकता नहीं है और सभी परियोजनाओं को मिलाकर उनका नाम *जवाहर रोजगार योजना* दिया गया। इस योजना के अन्दर यह प्रावधान हुआ कि गांवों में ऐसी योजनाएं कार्यान्वित की जाएं जिसका लाभ सभी ग्रामीणों को प्राप्त हो, खासकर, गरीब वर्ग के लोगों को। इस योजना के अन्दर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोगों को अधिक से अधिक रोजगार देने की बात कही गई। यह भी कहा गया कि कम से कम तीस प्रतिशत महिलाओं को, जो बेरोजगार हैं, रोजगार दिया जाएगा। इस योजना के अन्तर्गत मरूभूमि को खेती योग्य बनाने के लिए प्रयास किया गया। सिंचाई के लिए नहरें खोदी गई तथा उन सभी योजनाओं के कार्यान्वयन की बात हुई जिसका लाभ गरीब मजदूरों को मिलता। इस योजना के अन्तर्गत एक नई बात हुई कि इसका 80 प्रतिशत खर्च केन्द्र सरकार ने वहन किया और 20 प्रतिशत राज्य सरकारों ने।

अब *जवाहर रोजगार योजना* को बदल कर *जवाहर ग्राम समृद्धि योजना* कर दिया गया। परन्तु उद्देश्य करीब–करीब वही है। पहली अप्रैल 1999 को *स्वर्णजयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना* सरकार ने शुरू की है।

दिहाड़ी रोजगार से ग्रामीण परिसंपत्तियों का निर्माण

इस योजना का भी वही उद्देश्य है जो पहले की योजनाओं का था। मतलब है गांव में रहने वाले गरीब और भूमिहीन मजदूरों को रोजगार के अवसर दिलाए जाएं। इनमें 50 प्रतिशत अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों को रोजगार मिलें, 40 प्रतिशत महिलाओं को रोजगार मिलें और तीन प्रतिशत विकलांगों को।

इसमें कोई संदेह नहीं कि स्वर्ण जयन्ती ग्राम स्वरोजगार योजना अपने आप में एक बहुत ही महत्वपूर्ण योजना है। और ठीक ढंग से इसका कार्यान्वयन किया गया तो गांवों में रहने वाले गरीबों, खासकर कृषि मजदूरों को इससे बहुत लाभ होगा। इस योजना के अन्दर एक विशेष बात यह है कि अधिकतर योजनाओं के कार्यान्वयन का भार ग्राम पंचायतों को ही दिया गया है। ग्रामसभा की मंजूरी से 50 हजार रुपये तक की रकम की योजना वे स्वयं कार्यान्वित कर सकती हैं। इससे अधिक रकम की योजना के लिए उन्हें ऊपर के अधिकारियों की मंजूरी आवश्यक होगी। कहने का अर्थ है कि अधिक से अधिक अधिकार ग्रामपंचायतों को दिए गए हैं।

> यदि पंचायतें किसी योजना का कार्यान्वयन करती हैं तो गांव के हर नागरिक को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह यह जान सके कि इस योजना के कार्यान्वयन में कितनी धनराशि खर्च की गई है।

जनता का सहयोग जरूरी

पुराना अनुभव यह बताता है कि इन योजनाओं को चाहे जो भी नाम दिया जाए, ये सफल तभी हो सकती हैं जब इनमें पारदर्शिता आए। यदि पंचायतें किसी योजना का कार्यान्वयन करती हैं तो गांव के हर नागरिक को यह अधिकार प्राप्त होना चाहिए कि वह यह जान सके कि इस योजना के कार्यान्वयन में कितनी धनराशि खर्च की गई है। ऐसा तो नहीं कि इस योजना का लाभ मुट्ठीभर ठेकेदारों को ही मिलेगा और केवल कागज पर खानापूर्ति हो जाएगी।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार बढ़ाने की अनेकों योजनाएं आजादी से आज से आज तक बनाई गईं। परन्तु उनमें से अधिकतर असफल रहीं क्योंकि न तो उन्हें जनता का सहयोग मिला और न वे भ्रष्टाचार से मुक्त हो सकीं। ❑

रोजगार सृजन के कार्यक्रम

ग्रामीण पूंजी निर्माण करने वाले हों

उपेन्द्र प्रसाद*

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी दूर करने में कृषि की मुख्य भूमिका है। सरकार को कृषि कार्य के लिए बुनियादी ढांचा, बांध, नहरें, सड़कें बनाने पर जोर देना चाहिए। इससे रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे ही। इसके अलावा ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों को कारगर बनाने के लिए पंचायतों के अलावा गैर सरकारी संगठनों को भी जिम्मेदारी सौंपी जानी चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या ने कितना भयावह रूप धारण कर लिया है, इसकी झलक महानगरों के आबादी विस्फोट में देखी जा सकती है। महानगरों की बढ़ती आबादी गांवों में बढ़ती बेरोजगारी का परिणाम है और बेरोजगारों के बेहतरीन पलायन ने पारिवारिक तथा सामाजिक संबंधों के ताने–बाने को क्षत–विक्षत करना शुरू कर दिया है। केन्द्र सरकार ने ग्रामीण बेरोजगारी को दूर करने के लिए अनेक योजनाएं शुरू की हैं और उन पर अमल भी हो रहा है, लेकिन समस्या की विकरालता के सामने वे सारे प्रयास बौने साबित हो रहे हैं। हालांकि सच यह भी है कि इन योजनाओं के अभाव में आज का ग्रामीण भारत रहने लायक ही नहीं रह जाता, इसलिए इन सरकारी योजनाओं की उपयोगिता को नजर–अंदाज भी नहीं किया जा सकता। फिर भी समस्या का सही तथा पूरा निदान निकालने के लिए ग्रामीण विकास के लिए एक नई दृष्टि ईजाद तो करनी ही पड़ेगी, क्योंकि यदि हमें देश से बेरोजगारी का उन्मूलन करना है तो सबसे पहले गांवों में फैली बेरोजगारी पर ही चोट करनी पड़ेगी। इसके लिए अब तक के किए प्रयासों की उपादेयता पर भी विचार करना होगा।

* सहायक सम्पादक, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली

आर्थिक इतिहास का विभाजन

आजाद भारत के आर्थिक इतिहास को दो हिस्सों में बांटा जा सकता है। पहला, नियंत्रण काल तथा दूसरा उदारीकरण का काल। नियंत्रणकालीन भारत में विकास का जो माडल अपनाया गया, वह कृषि को प्राथमिकता देने वाला नहीं था। आजादी के समय औद्योगिक विकास के क्षेत्र में भारत पिछड़ा हुआ था और सार्वजनिक क्षेत्र ने उसका विकास का जिम्मा लिया। योजनाबद्ध विकास के उस दौर में कृषि को भले प्राथमिकता न मिली हो, पर उसकी उपेक्षा नहीं हुई। उसके लिए भी योजनाएं बनीं, लेकिन योजना का स्वरूप लगभग वही रहा, जो उद्योगों के लिए था। भारत की विविधता कृषि के क्षेत्र में भी प्रतिबिम्बित होती है। अलग–अलग क्षेत्रों की अलग–अलग समस्याएं थीं तथा उनकी विकास की संभावनाएं भी अलग–अलग किस्म की थीं। इसलिए कृषि तथा ग्रामीण विकास की योजनाएं अलग–अलग क्षेत्रों के अनुसार अलग–अलग होनी चाहिए थीं। पर ऐसा नहीं हुआ। कृषि राज्य का विषय है, पर इसके बारे में योजनाएं केन्द्र सरकार बनाती है तथा वित्त–राशि का बहुत बड़ा भाग भी वही जुटाती है। योजनाओं पर अमल कराने वाली एजेंसियां राज्य सरकारों के अधीन होती हैं। इस विसंगति का प्रभाव कृषि तथा अन्य ग्रामीण योजनाओं पर पड़ा। इसके कारण अव्वल तो किसी क्षेत्र विशेष में सर्वाधिक सटीक योजना बनी ही नहीं और यदि बनी भी तो सही क्रियान्वयन नहीं हो सका। योजनाओं पर अमल के लिए दी गई राशि को केन्द्र सरकार के खजाने से निकलकर गांवों तक जाना था। एक अध्ययन से पता चला कि कृषि तथा अन्य ग्रामीण योजनाओं पर केन्द्र सरकार द्वारा खर्च की जा रही कुल राशि का 85 प्रतिशत उन योजनाओं के प्रशासन पर ही खर्च हो जाता है। इस सनसनीखेज सच का उद्घाटन 1980 के दशक में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी ने किया था। नियंत्रणकालीन भारत के ग्रामीण विकास योजनाओं की प्रभावकारिता को श्री राजीव गांधी के उस बयान के दर्पण में देखा जा सकता है। यानी वास्तविक विकास कार्य पर खर्च किए गए हर 100 रुपये में मात्र 15 रुपये से ही होता था। 15 रुपये के इस हिस्से में भ्रष्टाचार की हिस्सेदारी अलग से होती थी।

नियंत्रण काल

1952 से 1991 के लगभग चार दशक को भारतीय अर्थव्यवस्था का नियंत्रणकाल कहा जा सकता है। गांवों की मुख्य आर्थिक गतिविधि कृषि, हालांकि नियंत्रण के क्षेत्र से लगभग बाहर ही रही। आजादी के बाद कृषि संबंधों में भारी बदलाव आया। जमींदारी प्रथा समाप्त कर दी गई तथा अनेक प्रकार के बिचौलिए खेत प्रथा खेतिहारों के बीच से हटे। इन सबका अच्छा प्रभाव कृषि उत्पादन पर पड़ा और हम अनाज के मामले में लगभग आत्म–निर्भर बनते गए, लेकिन कृषि में विकास की जितनी संभावनाएं थीं, उनका दोहन नहीं किया गया। शुरुआती वर्षों में यदि कृषि को हमारे योजनाकारों ने सर्वोच्च प्राथमिकता दी होती, तो आज भारत के विकास का नक्शा ही अलग होता। भारत निश्चय ही आज विश्व की एक आर्थिक महाशक्ति होता तथा औद्योगिक विकास में आज वह जिस पायदान पर खड़ा है, उसके ऊपर ही होता। पर यह तो अतीत की बात है। जो कुछ उस समय हुआ उसे अब पलटा नहीं जा सकता। आज उदारीकरण का दौर चल रहा है। नियंत्रणकाल की अनेक नीतियों को बदला जा रहा है। इस दौर में यह देखना जरूरी है कि अब कृषि का क्या स्थान रह गया है। ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या का हल निकालते समय कृषि पर ध्यान देना इसलिए जरूरी है कि गांवों की गतिविधियों का मूल केन्द्र सिर्फ कृषि ही है और सिर्फ कृषि ही हो सकती है।

उदारीकरण का युग

नियंत्रणकालीन भारत में कृषि तथा ग्रामीण विकास की जिन योजनाओं को शुरू किया गया था, लगभग वे सभी अभी भी चली आ रही हैं। उदारीकरण की नीतियों में कृषि से संबंधित नीतियों का लगभग अभाव–सा है। इस कारण केन्द्र सरकार पर यह आरोप लगता रहा है कि उसने नई आर्थिक नीतियों में कृषि तथा गांवों की उपेक्षा कर दी है। यह आरोप पूर्णतः सही नहीं है, क्योंकि उदारीकरण की नीतियां नियंत्रण को ढीला करने की एक प्रक्रिया मात्र है और चूंकि कृषि पर नियंत्रण था ही नहीं तो फिर उन्हें ढीला करने का सवाल ही कहां खड़ा होता है? हां, कृषि के विपणन संबंधी कुछ नीतियां नियंत्रण से संबंधित थीं, जिन्हें उदारीकृत किया जा रहा है। लेकिन गांवों के विकास की समस्या मूल रूप से कृषि उत्पादन में बढ़ोतरी की समस्या है। प्रति व्यक्ति अथवा प्रति एकड़ उत्पादकता में वृद्धि ही गांवों के विकास की गारंटी है और इसे सुनिश्चित करने की नीतियां ही गांवों में बेरोजगारी की समस्या के निदान को सुनिश्चित कर सकती हैं।

उदारीकरण के इस दौर में जब सब कुछ बाजार पर छोड़ा जा रहा है, केन्द्र सरकार से

ज्यादा नहरों से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को मजबूत आधार दिया जा सकता है

यह उम्मीद करना ज्यादती होगा कि कृषि तथा गांवों के विकास का जिम्मा वह अपने ऊपर ले ले। विकास की मुख्य जिम्मेदारी तो गांवों को अपने ऊपर ही लेनी होगी। सरकार की भूमिका अब यही हो सकती है कि वह गांवों के विकास के लिए उचित माहौल तैयार करे। कृषि विकास का मूलभूत ढांचा खड़ा करना सरकार की जिम्मेदारियों में शामिल है। यह निश्चय ही एक राष्ट्रीय शर्म की बात है कि देश के गांवों में अभी भी बिजली की पर्याप्त आपूर्ति नहीं हो पाई तथा सिंचाई के साधनों का विकास नहीं हो पाया है। यातायात के लिहाज से भी हमारे गांव बहुत ही पिछड़े हुए हैं। बाढ़ को रोकने के लिए बांधों की अपर्याप्तता हमारे विकास प्रयासों पर एक कटु टिप्पणी है। उदारीकरण के इस दौर में केन्द्र सरकार को यह तय करना होगा कि कृषि विकास के लिए मूलभूत ढांचा तैयार करने में उसकी क्या भूमिका होगी। सार्वजनिक क्षेत्र का निवेश लगातार घटता जा रहा है। केन्द्र सरकार निवेश में निजी क्षेत्र को प्रोत्साहन दे रही है, लेकिन जहां निश्चित और लाभकारी परिणाम नहीं मिलता, वहां निजी क्षेत्र निवेश नहीं करता। कृषि तथा ग्रामीण विकास के मूलभूत ढांचे को खड़ा करने के लिए देशी तथा विदेशी पूंजी आने वाली नहीं है। इसलिए केन्द्र सरकार को सार्वजनिक निवेश का सहारा ही लेना होगा। बांध, सड़कें तथा नहरें तैयार करने वाली महत्वकांक्षी योजनाओं को सरकार युद्ध–स्तर पर जितनी जल्दी तैयार तथा शुरू करे उतना ही अच्छा, क्योंकि भूमंडलीकरण के इस दौर में भारत काफी पिछड़ जाएगा।

नीतियों में बदलाव की जरूरत

ग्रामीण विकास पर केन्द्र सरकार द्वारा अरबों रुपये प्रति वर्ष खर्च किए जा रहे हैं। यह खर्च राज्य सरकारों की मार्फत होता है, जिसमें सरकारी मशीनरी शामिल होती है। राज्य सरकारों की वित्तीय स्थिति लगातार खराब होती जा रही है, जिसके कारण आए दिन सरकारी कर्मचारियों की हड़तालें होती रहती हैं। इसका ग्रामीण विकास के प्रयासों पर विपरीत असर पड़ रहा है। इसलिए केन्द्र सरकार को ग्रामीण विकास राशि खर्च करने से संबंधित नीतियों में बदलाव करना चाहिए। पहला बदलाव तो विकास प्राथमिकताओं में लाना चाहिए। केन्द्र सरकार की अधिकांश योजनाएं ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर उपलब्ध कराने की हैं। उसे रोजगार को द्वितीय प्राथमिकता बना देनी चाहिए। उसकी पहली प्राथमिकता कृषि विकास के मूलभूत ढांचे में विकास होनी चाहिए। गांवों में नदियों पर बांध बने, बांधों का सही रख–रखाव हो, सड़कें बनें तथा सड़कों का सही रख–रखाव हो, नहरें बनें तथा उनका सही रख–रखाव हो, इन्हें ही ग्रामीण विकास की सर्वोच्च प्राथमिकता बना देनी चाहिए। विकास कार्यों के लक्ष्य को इन परियोजनाओं की प्राप्ति के रूप में देख जाना चाहिए, न कि रोजगार दिवसों के सृजन के रूप में। यदि इनके विकास कार्यों पर काम चलेंगे, तो रोजगार अवसर अपने–आप पैदा होंगे। इसलिए ग्रामीण बेरोजगारी दूर करने के लिए सरकार को चाहिए कि वह श्रम दिवसों की गणना करना छोड़ दे तथा यह देखे कि उसके द्वारा किए जा रहे खर्च से कृषि विकास के लिए आवश्यक मूलभूत ढांचा कितना तैयार हो रहा है।

यह एक आर्थिक सच है कि कहीं रोजगार देने के लिए रोजगार पैदा नहीं किया जाता। यह साम्यवादी अर्थव्यवस्था की निशानी है कि व्यक्ति को इसलिए रोजगार दिया जाता है, क्योंकि उसे बेरोजगार नहीं रखना है। भारत में भी यह प्रवृत्ति बहुत फली–फूली है, जिसके तहत बेरोजगारी समाप्त करना हमारी पंचवर्षीय योजनओं तथा सरकारों का लक्ष्य रहा है। रोजगार उत्पादक होना चाहिए, यह हम भूलते चले गए। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या को हल करते समय हमें फिर याद कर लेना चाहिए कि दिया गया रोजगार उत्पादक हो और उत्पाद साफ–साफ जमीन पर दिखाई दे। यह सच है कि कुछ अर्थशास्त्रियों ने बेरोजगारों को रोजगार देने के लिए गड्ढे खोदने तथा उसे भरवाने की सिफारिश भी की है, लेकिन भारत जैसे देश जहां ग्रामीण क्षेत्र में विकास के मूलभूत ढांचे का भारी अभाव है, गड्ढे खोदने और भरने की सिफारिश की जरूरत नहीं।

गैर सरकारी संगठनों की भूमिका

राज्य सरकारों की प्रशासनिक मशीनरी की ग्रामीण विकास तथा वहां रोजगार सृजन की जिम्मेदारी सहन करने की क्षमता समाप्त हो रही है। इसलिए अब जरूरत इस बात की है कि गैर सरकारी संगठनों को इन कार्यों में ज्यादा से ज्यादा शामिल किया जाए। ग्राम पंचायतों को ज्यादा से ज्यादा भूमिका देने की बात भी जोर–शोर से की जा रही है, लेकिन पंचायती राज पर ज्यादा निर्भर करना बहुत उचित नहीं होगा। इसका कारण यह है कि पंचायत की एक छोटी सीमा होती है, जबकि कृषि विकास के मूलभूत ढांचे के विकास के लिए अनेक पंचायतों पर निर्भर रहना होगा। पंचायतों को पैसा प्रशासनिक मशीनरी के जरिये ही आता है और उसमें प्रशासनिक हस्तक्षेप की आशंका हमेशा बनी रहती है। पंचायतों के सरपंच सरकारी मशीनरी के सामने विवश नहीं होंगे इसके बारे में दावे से कुछ भी नहीं कहा जा सकता। सांसदों की विकास राशि की हो रही दुर्गति से पंचायतों की विवशता का अनुमान लगाया जा सकता है। नरसिंह राव सरकार ने प्रत्येक सांसद के लिए एक करोड़ रुपये की विकास राशि निर्धारित की थी। इसे बाद में बढ़ाकर दो करोड़ रुपये कर दिया गया। अब पाया गया है कि सांसद उस राशि का पूरा इस्तेमाल ही नहीं कर पाते, क्योंकि अफसर रोड़े अटकाते हैं और परियोजनाओं को पूरा करने की सरकारी प्रक्रिया ही कुछ ऐसी है कि समय पर काम हो ही नहीं पाता। जब सांसदों की विकास राशि का यह हाल है तो पंचायतों के लिए तय राशि का क्या हश्र होगा, इसका सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। आप पंचायतों को दी गई स्वायत्तता की लाख बात कहें, सच यही है कि पंचायतों द्वारा शुरू किए गए रोजगार सृजन कार्यक्रम पूरी तरह से सरकारी मशीनरी के नियंत्रण में ही होंगे। इसलिए यह जरूरी है कि केन्द्र सरकार गैर सरकारी संगठनों को ग्रामीण विकास का जिम्मा ज्यादा–से–ज्यादा सौंपें तथा विकास को परियोजनागत लक्ष्यों की प्राप्ति के रूप में आंका जाए। ❑

ताकि गांव शहर बन सकें

राजकिशोर*

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद आर्थिक विकास का जो मार्ग हमने अपनाया उससे गांवों में बेरोजगारी बहुत ज्यादा बढ़ गई है। लोग गांव छोड़कर शहरों में जाकर बसने और नारकीय जीवन जीने को मजबूर हैं। कृषि के उद्योगीकरण से भी गांव में सभी लोगों को रोजगार देने की क्षमता उसमें पैदा नहीं होगी और न ही शहरों के उद्योगों में सभी बेरोजगारों को काम देने की क्षमता है। फिर गांवों में व्याप्त बेरोजगारी दूर करने का उपाय क्या है? लेखक ने सुझाव दिया है कि हम अत्याधुनिक टेक्नोलाजी को अपनाने का प्रलोभन छोड़कर ऐसी टेक्नोलाजी अपनाएं जो बहुत पिछड़ी न हो, आधुनिक हो और जिसका लाभ सबको मिल सके। इससे व्यापक स्तर पर अपनाने से हो सकता है कि कुछ समय तक हमारा विदेश व्यापार प्रभावित हो। लेकिन हमने अगर 10 साल तक इसे अपनाए रखा तो हमारे गांवों में सभी बुनियादी सुविधाएं सुलभ हो जाएंगी और ग्रामीणों का शहरों की ओर पलायन थमने से शहरों पर भी आबादी का बोझ घटेगा और वहां उपलब्ध सुविधाओं पर अनावश्यक बोझ नहीं रहेगा।

आधुनिक सभ्यता में गांवों का कोई भविष्य नहीं है। वे अतीत की वस्तु हैं। संयुक्त राज्य अमरीका तथा पश्चिम यूरोप में गांव नहीं रह गए हैं। गांव सिर्फ उन्हीं देशों में बचे हैं, जो औद्योगिक दृष्टि से विकसित नहीं हैं। गांव के बचने का अर्थ है कृषि सभ्यता का बचना। कृषि सभ्यता में उद्योग–धंधे भी होते हैं, किंतु उनमें लगे हुए लोगों की कुल संख्या कृषि में लोगों की संख्या से बहुत कम होती है। खेती मुख्यतः गुजर–बसर के लिए की जाती है, यद्यपि उसका हिस्सा बाजार में भी जाता है, क्योंकि कृषकों को अन्य चीजें भी चाहिए तथा दूसरों को अनाज चाहिए। कृषि उद्योग का रूप नहीं ले पाती है। अतः उसमें पूंजी निवेश भी कम होता है और उसकी उत्पादकता भी कम होती है।

भारत जब 1947 में अजाद हुआ, तब वह कृषि–प्रधान देश था। यह खेद की बात है कि उद्योग–धंधों के तमाम विकास के बावजूद वह आज भी कृषि–प्रधान देश ही है। लगभग तीन–चौथाई रोजगार कृषि–क्षेत्र से ही पैदा होता है। इस स्थिति में ही यह निहित है कि भारत का वांछित आर्थिक विकास नहीं हुआ है। भारत में गांवों का इतनी बड़ी संख्या में और इस स्थिति में बचे रहना कोई सांस्कृतिक वरण की बात नहीं है। यदि भारत के लोगों ने अपनी ग्रामीण सभ्यता को बचाने का चुनाव किया होता, तो स्थिति कुछ और होती। तब हम शायद उस सभ्यता की ओर बढ़ रहे होते, जिसका स्वप्न गांधी जी ने देखा था। गांधी जी शहरों को नापसंद करते थे। उन्हें लगता था कि शहर पाप के अड्डे हैं। अगर सीधे–सीधे पाप के नहीं, तो विलासिता के जरूर, लेकिन विलासिता भी तो गांधी जी की नजर में पाप ही थी। इसके विपरीत ग्रामीण जीवन हमेशा सीधा–साधा और प्रकृति के नजदीक होता है। गांधी जी के सपनों का भारत आदर्श गांवों के अंतर्संबंधों पर आधारित भारत था, लेकिन गांधी के इस आदर्श को भारत ने पूरी तरह ठुकरा दिया। भारत में विकास की जो परिकल्पना बनी और लागू हुई, उसका आधार शहरीकरण था। इसलिए इस विकास का परीक्षण करने की कसौटी यही हो सकती है कि भारत में शहरीकरण की रफ्तार क्या है। यदि पचास वर्षों में देश की आधी आबादी का भी शहरीकरण नहीं हो पाया है, तो स्पष्ट है कि हम देश की अर्थव्यवस्था का रूपांतरण करने में किस कदर विफल रहे हैं। इस समय कोई तीस करोड़ लोग शहरों में रह रहे हैं। शहरों में रहनेवाली लगभग आधी आबादी अत्यंत नारकीय अवस्था में जीवन बिताती है। इनकी हालत कई दृष्टियों से यद्यपि ग्रामीणों से बेहतर है, किंतु कुल मिला कर वे गांव और शहर दोनों की नियामतों से वंचित हैं। शहर अक्सर इनके खिलाफ जेहाद बोलता रहता है, पर वे आखिर कहां जा सकते हैं। गांव में इनके लिए जगह नहीं है। शहर इन्हें स्वीकार करना नहीं चाहता। वस्तुतः इस विशाल वर्ग की ट्रेजडी भारतीय विकास की ट्रेजडी है।

गांवों और शहरों के बीच बढ़ती विषमता

यह अनुभव करने के लिए आंकड़ों की जरूरत नहीं है कि गांवों और शहरों के बीच कितना वैषम्य है। शहरों में आधुनिकतम सुविधाएं लगातार बढ़ती जा रही हैं, जबकि गांवों में अभी बुनियादी सुविधाएं तक नहीं पहुंच पाई हैं। क्या इसका कारण गांवों के प्रति द्वेष है? एक मायने में हां, क्योंकि हमारे राजनीतिक प्रतिष्ठान के सभी प्रमुख सदस्य

* वरिष्ठ पत्रकार और 'पंचायती राज अपडेट' के सम्पादक

शहरों में ही रहते हैं। अतः सरकारी कोष का एक बड़ा हिस्सा शहरों को सुंदर तथा सुविधायुक्त बनाने पर खर्च हो जाता है। उसके बाद जो थोड़ी–बहुत रकम बचती है, वह गांवों के विकास पर खर्च होती है। शहरों पर किए जाने वाले खर्च को स्वाभाविक खर्च माना जाता है, जबकि गांवों पर किए जाने वाले खर्च को ग्रामीण विकास मद में दिखाया जाता है। लेकिन सिर्फ इतने से शहर बनाम गांव की कहानी को ठीक से नहीं समझा जा सकता।

> शहरों में रहनेवाली लगभग आधी आबादी अत्यंत नारकीय अवस्था में जीवन बिताती है। इनकी हालत कई दृष्टियों से यद्यपि ग्रामीणों से बेहतर है, किंतु कुल मिलाकर वे गांव और शहर दोनों की नियामतों से वंचित हैं। शहर अक्सर इनके खिलाफ जेहाद बोलता रहता है, पर वे आखिर कहां जा सकते हैं। गांव में इनके लिए जगह नहीं है। शहर इन्हें स्वीकार करना नहीं चाहता। वस्तुतः इस विशाल वर्ग की ट्रेजडी भारतीय विकास की ट्रेजडी है।

मामला सिर्फ सरकार की नजर का नहीं है। मामला यह भी है कि शहरी आबादी की क्रय–शक्ति जिस रफ्तार से बढ़ती रही है; उस रफ्तार से गांवों में रहने वालों की क्रय–शक्ति नहीं बढ़ी है। जब आदमी में क्रय–शक्ति होती है, वह अपने लिए बहुत सारी सुविधाएं जुटा लेता है। उदाहरण के लिए शहरों के सरकारी अस्पतालों में ज्यादातर गरीब लोग ही जाते हैं। संपन्न लोग अपनी चिकित्सा प्राइवेट डाक्टरों या नर्सिंग होमों में कराते हैं, जो अक्सर बेहद खर्चीली होती है। सार्वजनिक परिवहन का उपयोग निम्न मध्य वर्ग के लोग करते हैं, जबकि संपन्न लोगों के पास निजी वाहन होते हैं। यही बात शिक्षा के बारे में भी सच है। अतः गांवों में रहनेवालों की क्रय–शक्ति ठीक होती, तो वे अपने लिए शिक्षा, चिकित्सा, परिवहन आदि सुविधाओं की व्यवस्था स्वयं कर लेते। इनके लिए उन्हें सरकारी अनुदान का मुंह नहीं जोहना पड़ता। चूंकि हमारी अधिकतर ग्रामीण आबादी गरीब है, इसलिए उसकी जीवन–शैली का आधुनिकीकरण नहीं हो पा रहा है। अर्थात गांवों और शहरों के बीच बढ़ रहे वैषम्य का अर्थ देश में वैषम्य की सामान्य वृद्धि का नतीजा है। इसके पीछे गांवों की उपेक्षा का भाव नहीं, बल्कि विकास की उस रणनीति को अपनाना है, जिसमें गांवों के लिए या गांवों में रहने वालों के लिए कोई जगह नहीं है। यह अकारण नहीं है कि उद्योग नीति तो हमने बार–बार बनाई, पर कृषि नीति अभी तक नहीं बना पाए हैं। यह विकास का ऐसा ढांचा है, जिसमें कुदरती तौर पर गांवों का विकास हो ही नहीं सकता। वे न केवल और ज्यादा पिछड़ेंगे, बल्कि नयी–नयी समस्याओं से घिरते जाएंगे।

कृषि के उद्योगीकरण का सवाल

ग्रामीण आबादी की क्रय–शक्ति कम होने का कारण कोई रहस्यपूर्ण नहीं है। बात सीधी–सी है। कृषि की उपज क्षमता कम है, कृषि के आलावा अन्य रोजगार बहुत ही कम हैं तथा शिक्षा का फैलाव नहीं हो पाया है, जिससे गांवों के बच्चे बड़ी संख्या में रोजगार के बाजार में उतर नहीं पाते हैं। हमारे देश में शिक्षित बेरोजगारी की दर कम इसलिए है कि माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा भी पूरी आबादी को सुलभ नहीं है। सिर्फ शिक्षा होने से ही रोजगार नहीं पैदा हो जाता, लेकिन रोजगार के बाजार पर दबाव जरूर पैदा हो जाता है। यदि गांवों में शिक्षा का बड़े पैमाने पर फैलाव हुआ होता, तो भारत में बेरोजगारी की समस्या अपने असली स्वरूप में दिखाई देती ओर यह देश की अर्थ नीति को भी प्रभावित करती। लेकिन ऐसा नहीं होने दिया गया। परिणाम–स्वरूप देश में बेरोजगारी की सही स्थिति सामने नहीं आ पाई है। जिन क्षेत्रों को हरित क्रांति का लाभ हुआ है, वहां समृद्धि आई है ऐसे इलाकों में गांवों और शहरों का फर्क कम है। लेकिन हरित क्रांति के इलाकों में भी साल भर रोजगार का कोई इंतजाम नहीं है। अतः कृषि की समृद्धि से आया हुआ पैसा एक प्रकार का सांस्कृतिक प्रदूषण फैला रहा है। अपराध का ग्राफ इन क्षेत्रों में तेजी से बढ़ा है। फिर हरित क्रांति का इलाका या वह इलाका जहां कृषि को आर्थिक दृष्टि से लाभदायक बनाया जा सकता है, बहुत ही सीमित है। देश की ज्यादातर कृषि अब भी बहुत ही छोटे–छोटे जोतों में बंटी हुई है जो न किसान के लिए पर्याप्त धन पैदा करती है, न खेतिहर मजदूरों के लिए। इसीलिए हमारे ज्यादातर किसान गरीब हैं और खेत मजदूर तो और भी विपन्न हालत में हैं। कृषि के अलावा अन्य उद्योग–धंधों का अभाव है, इसलिए बहुत बड़ी श्रमशक्ति बेकार पड़ी रहती है।

इस समय जोर कृषि के उद्योगीकरण का है। किंतु इसका पूरा लाभ भारतीय कृषि को नहीं मिल पाएगा। इसके दो मुख्य कारण है। एक कारण है जोतों का आकार छोटा होना। पूंजी–परक कृषि को बड़ा रकबा चाहिए। छोटे आकार के खेतों में यांत्रिक खेती नहीं की जा सकती। दूसरा कारण है किसान की पूंजी निवेश की क्षमता का कम होना। चूंकि औसत भारतीय किसान की आय उसके जीवन–यापन के लिए ही पर्याप्त नहीं है, अतः वह भविष्य के लिए बचत नहीं कर पाता। बचत न होने के कारण गांवों में पूंजी निर्माण नहीं हो पा रहा है। फिर नई पूंजीवादी खेती, जो नई अर्थनीति के केंद्र में है, कैसे होगी? एक तरीका यह हो सकता है, जिसकी ओर कर्नाटक ने पहल कर दी है कि गांवों में भूमि हदबंदी कानून को शिथिल कर दिया जाएं। इससे छोटे किसानों का सफाया हो जाएगा। उनकी जमीन अपेक्षाकृत बड़े किसान या देशी–विदेशी निगम उद्योगों हेतु कच्चा माल पैदा करने के लिए खरीद लेंगे। क्या इससे भारतीय गांवों का कायांतरण हो जाएगा? नहीं। कुछ लोगों को बेशक अच्छा रोजगार मिलेगा, कुछ बड़े किसान जरूरत अमीर हो जाएंगे। लेकिन ज्यादातर किसानों को खेत मजदूर होना पड़ेगा या शहरों में जाकर नारकीय जीवन बिताना होगा। यह एक स्वयं सिद्ध तथ्य है कि आधुनिक टेक्नोलाजी में रोजगार बढ़ाने की क्षमता नहीं है। अतः कृषि के आधुनिकीकरण से वैषम्य के कुछ नये रूप ही विकसित हो सकते हैं–उसमें गांवों की पूरी आबादी की उत्पादकता को

विमुक्त करने की क्षमता नहीं है।

क्या यह क्षमता शहरी उद्योगीकरण में है? पचास वर्ष के बाद भी हम मुश्किल से आठ–दस प्रतिशत आबादी को औद्योगिक क्षेत्र में रोजगार दे पाए हैं। पिछले छह वर्षों में नयी अर्थ नीति के सफल होने का बहुत ढिंढोरा पीटा गया है, लेकिन आंकड़े क्या कहते हैं? संगठित क्षेत्र में कुल रोजगार लगभग स्थिर है। अतः निजी–करण की रफ्तार और बढ़ा दी जाए तब भी इस बात की संभावना बहुत कम है कि देश में रोजगार के अवसर तेजी से बढ़ेंगे। फिर ग्रामीण आबादी का बड़ा हिस्सा क्या करेगा? उसका उत्पादक नियोग न कृषि में हो पाएगा और न उद्योग में। अतः गांवों की हालत और बिगड़ेगी। सफल पूंजीवाद में गांवों का भविष्य नहीं है। उनका पूरी तरह शहरीकरण हो जाता है। इसके विपरीत विफल पूंजीवाद में गांवों का कोई भविष्य नहीं है, क्योंकि वह गांवों की समस्याओं का समाधान नहीं कर सकता और उन्हें अपनी मलीनता में बजबजाने के लिए छोड़ देता है।

लेकिन अगर भारतीय गांवों का कोई भविष्य नहीं है, तो क्या भारत के शहरों का क्या कोई भविष्य है? शहरों की समस्या दिन–प्रतिदिन गंभीर होती जा रही है। जो शहर कुछ लाख की आबादी के लिए बनाए गए थे, वहां चौथाई करोड़–आधा करोड़ आबादी रह रही है। उनकी आवश्यकताओं को पूरा कर पाना नगर निगमों के लिए असंभव होता जा रहा है। शहरों के इस संकट को तीव्र करने में उस आबादी का निर्णायक महत्व है जो गांवों से पलायन कर रोजगार की तलाश में शहर आती है। लेकिन इस वर्ग के ज्यादातर लोगों को कैसा रोजगार मिलता है। वे शहरी सभ्यता की तलछट बन कर रह जाते हैं और नारकीय परिस्थितियों में रहते हैं। शहर उनसे गांव की खुली जिंदगी छीन लेता है और अपने गटर में डाल देता है। स्पष्ट है कि हमारे शहरों में यह क्षमता नहीं है कि वह रोजगार के शालीन अवसर पैदा कर सकें। स्पष्ट है कि अगर देश के गांवों को सुखी नहीं रखा गया, तो देश के शहर भी सुखी नहीं रह पाएंगे। पीड़ा का राष्ट्रीय संक्रमण होगा और पूरा देश एक भयानक समस्या बन कर रह जाएगा।

इस दुष्चक्र से कैसे बचें

क्या इस दुष्चक्र से निकलने का कोई रास्ता है? रास्ता यही है कि हम अपनी अर्थनीति के अत्याधुनिकीकरण की राह कुछ समय के लिए छोड़ दें। अत्याधुनिक टेक्नोलाजी कुछ लोगों का जीवन बेहतर बना सकती है, लेकिन वह सबको उत्पादक रोजगार नहीं दे सकती। अतः हमें टेक्नोलाजी का एक ऐसा स्तर अपने लिए चुनना होगा, जो बहुत पिछड़ी हुई न हो, आधुनिक हो और जिसका लाभ सबको मिल सके। अर्थात् टेक्नोलाजी के जिस स्तर तक सबको पहुंचाने के लिए हमारे पास पूंजी निवेश की क्षमता है, वही हमारे लिए आदर्श टेक्नोलाजी है। जाहिर है, यह आधुनिकतम टेक्नोलाजी नहीं हो सकती, क्योंकि उतना पैसा हमारे पास नहीं है। पर वह बहुत पिछड़ी हुई टेक्नोलाजी भी नहीं होगी। वह काफी हद तक आधुनिक होगी। हो सकता है इस टेक्नोलाजी को व्यापक स्तर पर अपनाने के बाद विदेश व्यापार से हमें कुछ समय तक विमुख रहना पड़े। विदेशी नियोग से विमुख होना अनिवार्य नहीं है। जो विदेशी भारत में विनियोग करना चाहते हैं, उनसे हम कह सकते हैं कि टेक्नोलॉजी के हमारे स्तर पर ही उन्हें पूंजी निवेश की छूट है। यदि उन्हें इसमें लाभ दिखाई देगा, तो वे निवेश करेंगे। लाभ नहीं दिखाई देगा, तो वे निवेश नहीं करेंगे। लेकिन इससे घबराने की कोई जरूरत नहीं है। भारतीय समाज अपने आप में इतना बड़ा बाजार है कि उसके बल पर एक पूरी अर्थव्यवस्था चलायी जा सकती है। वह आदर्श रूप में एक ऐसी अर्थव्यवस्था होगी, जिसमें गांवों और शहरों के बीच का फर्क क्रमशः कम होता जाएगा। गांव विकसित होंगे तथा सभी बुनियादी सुविधाओं से लैस होंगे। शहरों पर आबादी का दबाव कम होगा तथा वहां शालीनता के साथ रहना संभव होगा। यह भी कहा जा सकता है कि गांवों करीब–करीब शहर की तरह हो जाएंगे तथा शहर करीब–करीब गांवों की तरह। उनकी भूमिकाएं भी एक–दूसरे की पूरक होंगी। जाहिर है, इस प्रकार की अर्थनीति क्रांति नहीं होगी, बल्कि एक प्रकार की सांस्कृतिक क्रांति भी होगी। वस्तुतः जीवन एक पूरी इकाई होता है। अतः इसके बारे में समग्रता से ही सोचा जा सकता है।

> गांवों और शहरों के बीच बढ़ रहे वैषम्य का अर्थ देश में वैषम्य की सामान्य वृद्धि का नतीजा है। इसके पीछे गांवों की उपेक्षा का भाव नहीं, बल्कि विकास की उस रणनीति को अपनाना है, जिसमें गांवों के लिए या गांवों में रहनेवालों के लिए कोई जगह नहीं है।

इस तरह की अर्थव्यवस्था में ही गांवों में बड़े पैमाने पर रोजगार पैदा होगा। कृषि पर आबादी का दबाव कम होगा तथा ग्रामीण आबादी के लिए उद्यम के नये–नये रूप विकसित होंगे। इसकी शुरुआत के लिए ये कुछ कदम उठाना अनिवार्य होगा : 1. ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा पर भारी निवेश। प्रत्येक गांव के प्रत्येक बच्चे को हाई स्कूल तक की शिक्षा हो सके तो मुफ्त, नहीं तो अत्यंत अल्प लागत पर मिलनी ही चाहिए। 2. ग्रामों में लघु उद्योगों के विकास के लिए वित्तीय संस्थानों तथा सरकार की ओर से सभी सुविधाएं उपलब्ध करना। 3. कृषि उपज का उचित मूल्य दिया जाना, ताकि गांव के लोगों की क्रय–शक्ति बढ़ सके। यदि ग्रामीण विकास को राष्ट्रीय मुद्दा बनाया गया, तो हमें जवाहर रोजगार योजना, इंदिरा आवास योजना आदि की कोई जरूरत नहीं रह जाएगी। लोग किसी की दया से नहीं, अपने उद्यम और श्रम से अविकास की खाई पूरी करेंगे। यदि इस रास्ते पर सिर्फ दस साल भी चला गया, तो हमारे गांवों को पहचानना भी मुश्किल हो जाएगा – वे छोटे–छोटे स्वस्थ शहर होंगे। तब हमारे बड़े शहरों को भी भारी राहत मिलेगी और अपेक्षाकृत व्यवस्थित हो सकेंगे। तब यह भी हो सकता है कि कई शहरों के बहुत–से लोग गांवों में जाकर साफ–सुथरे परिवेश में साफ–सुथरी जिंदगी जीना पसंद करें–आज की तरह फार्म हाऊस की वैभवशाली, पर कटी हुई और कृत्रिम जिंदगी नहीं। ❑

पिछड़े इलाकों पर ज्यादा जोर देने की जरूरत

मंजू पंवार*

ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या गंभीर है। इसे दूर करने के प्रयासों के रूप में पहले से चल रही विकास योजनाओं का स्वरूप बदलकर स्वर्ण जयंती रोजगार योजना शुरू की गई है। लेकिन इसे लागू करने के बारे में अभी संबंधित लोगों को पर्याप्त जानकारी नहीं है। इसके अलावा ग्रामीण विकास योजनाएं ऐसे क्षेत्रों में भी चल रही है जहां गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले लोगों की संख्या नगण्य है। यह मत व्यक्त करते हुए लेखक ने बताया है कि इन योजनाओं के कार्यान्वयन में नौकरशाही के बजाय पंचायतों की भूमिका अधिक होनी चाहिए। इसके अलावा साधनों को विभिन्न कार्यक्रमों में विभाजित करने के बजाय ग्राम स्तर पर समग्र योजना बनाना ज्यादा उद्देश्यपूर्ण सिद्ध होगा।

ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या गम्भीर है और समय के साथ–साथ यह अधिक गम्भीर होती जा रही है। उदाहरण के लिए नवीं पंचवर्षीय योजना के दौरान जनसंख्या वृद्धि दर 1.58 प्रतिशत रहने का अनुमान है जबकि श्रम शक्ति में वृद्धि पर 2.51 प्रतिशत होने की संभावना है जो कि अब तक की वृद्धि दर में सबसे अधिक है। बेरोजगारी की समस्या से निबटने के लिए केन्द्र सरकार ने विभिन्न स्वरोजगार व दिहाड़ी मजदूरी वाले कार्यक्रम चलाए हैं जिनका समय के साथ रूप व स्वरूप बदलता रहा। वित्तीय वर्ष 1999–2000 के आरम्भ में इन कार्यक्रमों का पुनः स्वरूप बदला। स्वरोजगार की स्कीमों– आई. आर. डी. पी., डवाकरा, ट्राइसम, सिटरा आदि को मिलाकर नई योजना *स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना* शुरू की गई। दिहाड़ी मजदूरी की स्कीम *जवाहर रोजगार* योजना का नाम और स्वरूप बदल कर *जवाहर ग्राम समृद्धि योजना* कर दिया गया। इसका मुख्य

स्व–सहायता समूह अपने कई स्वरोजगार शुरू कर सकते हैं

* स्वतंत्र पत्रकार

उद्देश्य रोजगार सृजन की बजाय ग्रामीण बुनियादी ढांचे का निर्माण करना है।

स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना

विभिन्न स्वरोजगार कार्यक्रमों को समन्वित करके अप्रैल 1999 में लागू की गई *स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना* के तीन मुख्य पहलू हैं। प्रथम व्यक्तिगत स्तर पर रोजगार सृजन, द्वितीय; सामूहिक स्तर पर रोजगार सृजन तथा बड़े क्षेत्र के लिए विशेष परियोजना तैयार कर रोजगार अवसरों में वृद्धि करना। लेकिन योजना का मुख्य जोर सामूहिकता पर है। दूसरे शब्दों में सामूहिक उद्यमता पर अधिक बल है। इस योजना को लागू हुए एक वर्ष होने जा रहा है। आइये देखते हैं कि अब तक इसके क्रियान्वयन में क्या उपलब्धियां हुई हैं और सरकारी, बैंकिंग व जमीनी स्तर पर इसके बारे में क्या सोच व प्रतिक्रिया है। हमारे अनुभव उत्तर प्रदेश राज्य के जिला सहारनपुर से संबंधित हैं।

उत्तर प्रदेश में इस योजना के अंतर्गत वार्षिक परिव्यय 2,50,003.493 लाख रुपये है। पहली अप्रैल 1999 को 16,653.180 लाख रुपये शेष था। वर्ष 1999–2000 के दौरान केन्द्र सरकार द्वारा 8549.883 लाख रुपये 'रिलीज' किए गए। राज्य सरकार को इसका 25 प्रतिशत 'रिलीज' करना था क्योंकि इस योजना में केन्द्र व राज्य में साधनों के बंटवारे का अनुपात 75:25 है लेकिन राज्य सरकार ने दिसम्बर 1999 तक कोई धन भी रिलीज नहीं किया था। बिना राज्य सरकार के 'रिलीज' के भी राज्य सरकार के पास कुल धन 25,205.063 लाख रुपये था जिनमें से दिसम्बर 1999 तक मात्र 2144.51 लाख रुपये ही व्यय किए हैं जो उपलब्ध साधनों का मात्र 8.5 प्रतिशत है। राज्य के कुछ जनपद जैसे मुज्जफरनगर, मुरादाबाद, कौशम्भी, कनौज, सौनभद्र, देवरिया, बलिया, बहराईच, पिथौरागढ़ जिले ऐसे हैं जहां पर इस योजना के तहत कोई धन व्यय नहीं किया गया है। इससे स्पष्ट है कि इस योजना का क्रियान्वयन राज्य में नहीं के बराबर हुआ है। हो सकता है कि 8.5 प्रतिशत व्यय में अधिकतर व्यय प्रशासनिक व्यय ही हो।

जिला स्तर और खण्ड स्तर पर कार्यरत अधिकारी इस योजना के बारे में पूरी जानकारी नहीं रखते हैं। इस योजना को लागू हुए एक वर्ष होने जो रहा है, डी. आर. डी. ए. के कर्मचारी अभी इसी उधेड़बुन में है कि इसे कैसे लागू किया जाए। डी. आर. डी. ए. सहारनपुर को इस योजना के महत्वपूर्ण पहलू अर्थात् विशिष्ट परियोजनाओं की जानकारी ही नहीं थी। "प्रोग्रेस" के नाम पर स्थिति यह है कि 155 ग्रुप बनाने का लक्ष्य रखा था। लेकिन नवम्बर तक मात्र 54 ग्रुप ही जिले के अन्दर बन पाए हैं। वास्तव में देखा जाए तो इस कार्यक्रम में उन का दोष नहीं है क्योंकि योजना की मार्गदर्शिका के बाद राज्य सरकार से 38 शासनादेश आ चुके हैं कि अमुक कार्य इस तरह करना है या उस तरह करना है। इससे अनिश्चितता का वातावरण बना हुआ है। वर्तमान मार्गदर्शिका व शासनादेशों को ध्यान में रख कर कार्य किया जाए तो हो सकता है कि कल ही कोई और शासनादेश आ जाए और फिर रद्दोबदल करनी पड़े। योजना की निर्देशिका के अनुसार प्रत्येक खण्ड से 4 या 5 गतिविधियों की पहचान करके उन्हीं गतिविधियों के अंतर्गत समूह बनाने हैं या व्यक्तियों को लाभ पहुंचाना है। यह बात इस कार्यक्रम में कार्यरत स्टाफ को मालूम नहीं थी। उन्होंने व्यक्तिगत लाभर्थियों को पहचान की गई गतिविधियों से अलग गतिविधियों में लाभ दे दिया था।

> उनका कहना है कि जब समूह और 'स्वयं सहायता समूह' आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, गुजरात में सफल हो सकते हैं तो यहां क्यों नहीं?

जिला सहारनपुर के साढ़ौली कदीम ब्लाक में मात्र 5 समूह बने हैं जिनमें चार गांव असगरपुर में है तथा एक सेरपुर पैली गांव में है। ब्लाक स्टाफ से बात करने पर पता चला की समूह तो बन गए हैं लेकिन वे इनसे क्या काम होना है, कैसे होना है यह उनको साफ तौर पर मालूम नहीं है। असगरपुर गांव में जानकारी प्राप्त करने पर पता चला कि चार समूह में तीन बान बनाने से संबंधित हैं तथा एक बैलों की गले की घंटी बनाने से संबंधित हैं। इन चार समूहों में से तीन महिलाओं के समूह हैं जो पहले से ही डवाकरा के अंतर्गत कार्य कर रहे हैं।

एक समूह जो घंटी बनाने से संबंधित है, वास्तव में नया बना है उसकी अभी कुछ भी गतिवधियां शुरू नहीं हुई हैं न बैंक में खाता है न बचत हो रही है। इस गांव के प्रधान को भी इन समूहों के बारे में कुछ जानकारी नहीं है।

योजना के क्रियान्वयन में बैंकों की अहम भूमिका है। इसी को ध्यान में रखकर साढ़ौली कदीम ब्लाक मुख्यालय पर पंजाब नेशनल बैंक के मैनेजर के विचार जाने गए। वैसे उनके कार्य–क्षेत्र में कोई भी समूह नहीं बना है लेकिन इस योजना के बारे में उन्हें अच्छी जानकारी है। उनका कहना है कि जब समूह और 'स्वयं सहायता समूह' आन्ध्रप्रदेश, कर्नाटक, गुजरात में सफल हो सकते हैं तो यहां क्यों नहीं? चूंकि यह योजना नई है इसलिए इसकी जानकारी लोगों को देनी है। लेकिन मैनेजर के अनुसार यहां पर गरीबी समस्या है ही नहीं। उपरोक्त जमीनी स्तर के अनुभव से स्पष्ट है कि योजना को लगभग एक वर्ष होने जा रहा है। लेकिन अभी अधिकतर कार्य कागजों पर ही है। विभिन्न स्तरों पर भ्रम का वातावरण बना हुआ है। हो सकता है कि अगले वित्तीय वर्ष में योजना के बारे में कुछ स्पष्ट तस्वीर सामने आए।

हालांकि ये अनुभव एक जिले से संबंधित हैं लेकिन इनसे यह अन्दाजा जरूर लगाया जा सकता है कि लगभग पूरे प्रदेश में "टीथीगपरोबल्म" है। प्रशासन को इस योजना के विभिन्न पहलुओं पर कर्मचारियों को प्रशिक्षण देना चाहिए।

योजना के क्रियान्वयन में डी.आर.डी.ए. के सरकारी कर्मचारी की भागीदारी अधिक है और पंचायत प्रतिनिधियों की भागीदारी कम है। पहला प्रश्न तो यही उठता है कि जब जिला स्तर पर संवैधानिक संस्था जिला पंचायत है तो एक सरकारी संस्था डी.आर.डी.ए. की क्या आवश्यकता है। योजना के पैरा 3.10 में दिया है कि बैंक या बी. डी. ओ. जाकर स्वयं सहायता समूह को इसके लाभ के बारे में बताएंगे। लेकिन कहीं भी यह नहीं दिया कि बी. डी. सी. का सदस्य या ग्राम प्रधान समूह को प्रेरित करेंगे। सम्पूर्ण योजना में ग्रांम पंचायत

की भूमिका नहीं के बराबर है जबकि समूह को बनाने, उनको उत्प्रेरित करने व ऋण अदायगी में इनकी भूमिका होनी चाहिए थी। अब देखने की बात है कि बी.डी.ओ. कितने लोगों को उत्पेरित कर पायेंगे। जिला सहारनपुर का उदाहरण लो। यहां पर 11 ब्लाकों में बी.डी.ओ. की 3 जगह खाली पड़ी है, फिर बी.डी.ओ. और अन्य कर्मचारी या बैंक कर्मचारी लोगों को उत्प्रेरित करने के काम में कहां तक अपने आपको लगा सकते हैं?

रोजगार सृजन की भावी रणनीति

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन करने के अलावा कोई चारा ही नहीं है। गांवों से रोजगार की तलाश में शहरों में ग्रामीणों का पलायन पहले से बोझिल नगरीय व्यवस्था को और बोझिल बना देता है। संविधान संशोधन कर पंचायती राज को पुनः अधिक अधिकार व शक्तियों के साथ नया जीवन देने के पीछे यही ध्येय है।

नौकरशाही को ग्रामीणों और उनके द्वारा चुने हुए पंचायत प्रतिनिधियों पर सबसे पहले विश्वास करना पड़ेगा कि ये लोग गांव की समस्याओं को जानते हैं और यदि उन्हें मौका दिया जाए तो उनका समाधान भी कर सकते हैं। रोजगार सृजन व गरीबी हटाने के जितने भी कार्यक्रम चल रहे हैं उनकी मार्गदर्शिका को देखें तो पता चलता है कि कार्य के संचालन में मुख्य भूमिका नौकरशाही की है। केन्द्र, राज्य व जिला स्तर के नौकरशाहों को यह कहते सुना है कि चुने हुए प्रतिनिधियों को क्या पता है कि पंचायतों के चुने हुए प्रतिनिधि अधिकतर पढ़े लिखे नहीं हैं और साथ ही उन्हें कार्य करने की पूरी आजादी भी नहीं है, इसलिए वे भी नौकरशाही के चंगुल में फंस कर समस्या के समाधान की बजाय गांव से ब्लाक और ब्लाक से जिले में 'शटलिंग' करते रहते हैं। नौकरशाही के इस 'माइंड सैट' को बदलना जरूरी है। नौकरशाही को बेरोजगारी और गरीबी दूर करने के कार्यक्रमों को चलाते हुए आधी सदी बीत गई है। केन्द्र और राज्य सरकार मात्र 10 वर्ष के लिए बेरोजगारी हटाने की सम्पूर्ण जिम्मेदारी पंचायतों को दें और देखें कि परिणाम कितने सकारात्मक होंगे। 73वें संविधान की धारा 243 जी में साफ लिखा है कि पंचायतें आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की योजनाएं बनाएंगी और क्रियान्वित करेंगी। लेकिन स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना की मार्गदर्शिका में कहीं नहीं लिखा कि यह विकेंद्रित योजना का हिस्सा होगी। इस तरह के उदाहरण साफ तौर पर बताते हैं कि भले ही पंचायतें गठित हो गई हों लेकिन अब भी कुल मिलाकर ग्रामीण विकास की बागडोर नौकरशाहों के हाथ में है।

लेकिन जरूरी नहीं है कि प्रत्येक कार्यक्रम सम्पूर्ण देश में चलाया जाए क्योंकि भिन्न–भिन्न क्षेत्रों की समस्याएं भिन्न हैं। पश्चिम उत्तर प्रदेश का ही उदाहरण लीजिए। इसमें ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या है ही नहीं। अगर कुछ समस्या है भी वह पढ़े लिखों की है जिन्होंने बी. ए., एम. ए. कर लिया है और चाहते हैं कि उनको 'व्हाइट कालर' नौकरी मिल जाए। हाथ का कार्य या स्वरोजगार करना ही नहीं चाहते। यह कहना कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी कि पश्चिम उत्तर प्रदेश में लोग रोजगार बढ़ाने के लिए ऋण न लेकर मात्र सब्सिडी में रुचि रखते हैं। इस क्षेत्र में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के अंतर्गत अधिकृत लाभार्थी गरीबी की रेखा से ऊपर वाले होंगे। इसका सर्वेक्षण किसी भी स्वतंत्र एजेंसी से कराया जा सकता है। इन्दिरा आवास योजना का ही उदाहरण लें। लाभार्थी को मकान के लिए बीस हजार रुपये मिलते हैं। उनमें से एक लाभार्थी को पहले ही पांच हजार रिश्वत के रूप में लिए। सोचने की बात है कौन गरीब मकान बनाने के लिए पहले 5,000 रुपये रिश्वत के रूप में दे सकता है। सिर्फ वही दे सकता है जो बहुत गरीब नहीं है। कहने का अर्थ है कि जहां पर गरीबी है वही पर अधिक जोर रोजगार के साधन जुटाने के प्रयास किए जाने चाहिए। सभी जगहों पर वित्तीय साधनों का फैलाव करना देश के वास्तविक गरीबों के साथ न्याय नहीं है।

रोजगार सृजन के लिए तकनीक, कच्ची सामग्री व मार्केटिग का त्रिकोण बनाना आवश्यक है। लोग कहते सुने गये हैं कि कार्य तो करें लेकिन कच्चा माल कहां से आएगा और अगर माल तैयार भी कर लिया तो उसकी बिक्री कैसे होगी।

गरीब विरोधी नीतियां

सरकार एक तरफ तो गरीबी दूर करने और रोजगारी के अवसर बढ़ाने के लिए विभिन्न कार्यक्रम चला रहे हैं दूसरी तरफ सरकार की अनेक नीतियां ऐसी हैं जो गरीबों के खिलाफ है। इसी तरह की नीतियों की पहचान करने के लिए 1997 में स्टीरिंग ग्रुप की 'पावर्टी एलीवेशन एण्ड एशिया डवलपमेंट रिपोर्ट' जो नवीं योजना के बारे में थी, उसमें कहा गया था कि 'गरीबी हटाओ रणनीति' में जो नीतिगत और संस्थागत कमियां है उन पर बहुत कम ध्यान दिया गया है। अगर सही मायने में गरीबी और बेरोजगारी पर प्रहार करना है तो ऐसी नीतियों और संस्थागत मुद्दों को गरीबों के अनुकूल बनाने की जरूरत है। उदाहरण के लिए उड़ीसा में वन नीति और वन संरक्षण अधिनियम के विरुद्ध 'बेम्बू फोरेस्ट' पर नियंत्रण पेपर मिलों का है। आदिवासी महिलाओं को यह भी अधिकार नहीं है कि 'हिलबूम' का प्रोसेस कर लें, स्टोर कर ले या बेच लें। 29 लघु वन उत्पादों को 'प्राईवेट ट्रैडर्स' को पट्टे पर दिया है। इसी प्रकार महाराष्ट्र में बलारपुर पेपर मिल को अधिक सब्सिडी "बेम्ब" मिलता है। जो गरीबों के हित के विरुद्ध हैं। अतः रोजगार के साधन बढ़ने व बेरोजगारी दूर करने के लिए इस तरह की नीतियों को दुरस्त करने की भी जरूरत है।

निष्कर्ष

समय के साथ बेरोजगारी हटाने व गरीबी दूर करने के लिए अनेक कार्यक्रम व योजनाओं में बदलाव आया है। वर्ष 1999–2000 के दौरान भी पिछले कार्यक्रमों को मिलाकर नया कार्यक्रम शुरू किया है। लेकिन गांवों के समग्र विकास के लिए कार्यक्रम नहीं हैं। इसके लिए सम्पूर्ण साधन विभिन्न कार्यक्रमों में विभाजित करने की बजाय गांव स्तर पर समग्र विकास के लिए योजना बनाने की जरूरत है जिसके लिए संवैधानिक संस्था पंचायतें अस्तित्व में हैं। इन संस्थाओं को कार्यात्मक, वित्तीय व प्रशासनिक स्वायत्तता प्रदान कर आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय की समग्र योजना बनाने की जिम्मेदारी सौंपनी होगी। रोजगार सृजन इस प्रकार की योजना का एक भाग होगा। ❑

भारत को विकसित देश बनाने के लिए बेरोजगारी दूर करना जरूरी

रामजी प्रसाद सिंह*

भारत तेजी से विश्व के मानचित्र पर एक महाशक्ति के रूप में उदित हो रहा है। लेकिन देश का विकास संतुलित ढंग से नहीं हो रहा है। अभी भी देश की एक तिहाई आबादी गरीबी की रेखा के नीचे जीवन बसर करने को मजबूर है। ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की दशा दयनीय है। यह विचार व्यक्ति करते हुए लेखक ने कहा है कि सरकार ने ग्रामीण विकास की अनेक योजनाएं शुरू कर रखी हैं लेकिन उनके अमल पर निगरानी रखने की जरूरत है। इसके अलावा पंचायतों को राज्य सरकारों द्वारा अधिक वित्तीय साधन दिए जाने चाहिए ताकि वे 73वें संविधान की मंशा के मुताबिक सत्ता की सब से निचली इकाई के रूप में अपने दायित्व कारगर ढंग से निभा सकें।

भयंकर प्रसव–पीड़ा के बावजूद भारत, संसार की एक महाशक्ति के रूप में अवतरित हो चुका है। अब कोई इसकी विकास की गति में रोड़ा नहीं अटका सकता । विकसित देश भारत में पूंजी लगाने के लिए एक–दूसरे के साथ होड़ लगा रहे हैं। भारत ने यह सिद्ध कर दिया है कि लोकतांत्रिक शासन–व्यवस्था आर्थिक–विकास में बाधक नहीं, साधक होती है। तीव्र गति से आर्थिक–विकास सुनिश्चित करने के लिए अधिनायकवादी शासन की आवश्यकता नहीं है। भारत आज दुनिया के विकासशील देशों के लिए एक प्रतिमान बन गया है।

जरूरत केवल इस बात की रह गई है कि

* वरिष्ठ पत्रकार

हम अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था को मजबूत रखें। सत्ता के विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया को तेज करें। ग्राम पंचायतों को शासन की मूल इकाई के रूप में संगठित करें। इनके विकास के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को दूर करें ताकि शासन–व्यवस्था और पुनर्निर्माण के कार्यों में जनसाधारण की प्रत्यक्ष भागीदारी हो। निर्धन और अशक्त व्यक्ति भी राष्ट्रीय उत्पादन बढ़ाने में सहायक हो। उनकी उत्पादन–क्षमता नष्ट न हो। 73वें संविधान संशोधन अधिनियम का यही उद्देश्य है। अतएव, इसके कार्यान्वयन पर जोर जारी रहना चाहिए।

असंतुलित विकास

यद्यपि हमारी एक तिहाई आबादी अभी भी गरीबी की रेखा के नीचे है; निरक्षर और बेरोजगार है फिर भी इक्कीसवीं सदी भारत की ही है। "हर खेत को जल और हर हाथ को काम" देने में हम सफल नहीं हुए हैं। किंतु दिशा ठीक है, लक्ष्य स्पष्ट रूप से निर्धारित हो चुका है और योजनाबद्ध विकास की, पंडित जवाहरलाल नेहरू की रणनीति, सफलता की रफ्तार की गारंटी दे रही है। समस्या केवल विकास में संतुलन पैदा करने की है। स्वभावतः आगामी वर्षों में भारत को अपने विकास में असंतुलन दूर करने का प्रयास करना होगा ताकि अमीर और गरीब के बीच की बढ़ती हुई खाई कम की जा सके। बेरोजगारी समाप्त हो, निर्धनता दूर हो और क्षेत्रीय असंतुलन के कारण देश की उत्पादन–क्षमता का ह्रास न हो। इसके लिए एक ओर सामाजिक सद्भावना का वातावरण कायम रखने और वंचित वर्ग के जीवन–स्तर में सुधार के लिए सुनिश्चित कदम उठाने की जरूरत है।

इसके लिए रोजगार के अवसर बढ़ाने होंगे और बेरोजगार लोगों की क्षमता बढ़ानी होगी। यह किसी एक मंत्रालय का काम नहीं है। इसमें आर्थिक मंत्रालयों को अपनी भूमिका निश्चित करनी होगी। ग्रामीण विकास मंत्रालय को उनके कार्यों में समन्वय करना होगा। इसमें जरा भी ढिलाई हुई तो ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी और बढ़ेगी। नतीजा गांवों से युवकों का पलायन बढ़ेगा। गांवों की उत्पादन–शक्ति घटेगी और शहरों में आबादी की बाढ़ के कारण प्रदूषण और बीमारी की समस्या विकराल रूप धारण कर लेगी।

गरीबी पर प्रहार

भारत सरकार ने गरीबी निराकरण के लिए, पिछले दशक में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए हैं। वैसे 1963 में ही लोकसभा के चुनाव के दौरान जनता ने स्पष्ट रूप से बता दिया था कि वह उसकी विकास–नीति से प्रसन्न नहीं है। इसलिए सरकार ने प्रथम तीन पंचवर्षीय योजना काल की इस धारणा को छोड़ दिया

स्वभावतः आगामी वर्षों में भारत को अपने विकास में असंतुलन दूर करने का प्रयास करना होगा ताकि अमीर और गरीब के बीच की बढ़ती हुई खाई कम की जा सके। बेरोजगारी समाप्त हो, निर्धनता दूर हो और क्षेत्रीय असंतुलन के कारण देश की उत्पादन–क्षमता का ह्रास न हो।

कि विकास की दर में वृद्धि से, जनसाधारण की आर्थिक स्थिति भी स्वतः सुधर जाएगी। केन्द्र सरकार ने चौथी पंचवर्षीय योजना काल में अपनी विकास–नीति में निश्चित परिवर्तन किया और गांव, ग्रामीण बेरोजगार और निर्धन लोगों को प्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुंचाने का कार्यक्रम घोषित किया। नतीजा गरीबी हटाने का अभियान शुरू हो गया। इसके दौरान छोटे किसानों के लिए एक विकास एजेंसी स्थापित की गयी और सीमान्त किसानों और खेत मजदूरों को अपना रोजगार शुरू करने में सहायता देने के लिए 85 जिलों में एक अन्य योजना लागू की गई।

इसी प्रकार पांचवीं योजना के दौरान निर्धनतम तीस प्रतिशत आबादी को प्रत्यक्ष लाभ पहुंचाने के लिए गांवों में 'न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम' आरंभ किया गया। इसके तहत गांवों में शिक्षा, स्वास्थ्य, चिकित्सा सेवा का विस्तार किया गया। शुद्ध पेयजल की आपूर्ति सुनिश्चित करने का लक्ष्य निर्धारित किया गया और सभी गांवों को सड़क से जोड़ने का काम आरंभ हुआ।

छठी से आठवीं योजना के बीच निर्धनता हटाने के उद्देश्य से गरीबी की रेखा के नीचे के सभी परिवारों की सूची बनाई गई और उन्हें अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के लिए प्रत्यक्ष रूप से सहायता देने की प्रक्रिया शुरू हुई। इसके परिणामस्वरूप सन् 1973–74 में, जहां देश की 56.4 प्रतिशत गरीबी की रेखा के नीचे थी, 1977 में घटकर 53 प्रतिशत, 1963 में 45.6 प्रतिशत, 1988 में 39.1 प्रतिशत और मार्च 1994 में 37.2 प्रतिशत पर पहुंच गई। परन्तु, असम, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में गरीबी की रेखा के नीचे की आबादी राष्ट्रीय औसत से अधिक रही।

इसके कारण केन्द्र सरकार को गरीबी उन्मूलन संबंधी परियोजनाओं पर फिर से विचार करना पड़ा। इस पर राज्य सरकारों से भी मंत्रणा की गई और निर्णय लिया गया कि गरीबी हटाने के लिए जारी योजनाओं की रूपरेखा में ऐसा परिवर्तन किया जाए ताकि गांवों में बुनियादी सेवाओं का विस्तार हो; स्थायी महत्व की परिसम्पत्तियां बनें और दीर्घ काल तक सेवा देने वाला बुनियादी ढांचा तैयार हो। यह ढांचा रोजगार–सृजन में

इसके परिणामस्वरूप सन् 1973–74 में, जहां देश की 56.4 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा के नीचे थी, 1977 में घटकर 53 प्रतिशत, 1963 में 45.6 प्रतिशत, 1988 में 39.1 प्रतिशत और मार्च 1994 में 37.27 प्रतिशत पर पहुंच गई।

सहायक हो और युवकों को स्वरोजगार की प्रेरणा दे।

इसी क्रम में, जवाहर रोजगार योजना का कार्य–क्षेत्र बढ़ाकर उसके अन्तर्गत ग्रामीण सड़क और प्राथमिक विद्यालयों के भवन–निर्माण की भी व्यवस्था कर दी गई। इसका नाम बदलकर *जवाहर ग्राम समृद्धि योजना*

कर दिया गया और पहली अप्रैल 1999 से लागू कर दिया गया। इसके अनुसार 50,000 रुपये तक की परियोजनाओं के निर्माण और कार्यान्वयन का अधिकार ग्राम पंचायतों को दे दिया गया। इससे बड़ी योजनाओं के निर्माण और कार्यान्वयन के लिए ग्राम–पंचायतों को सरकार की पूर्व स्वीकृति (प्रशासकीय स्वीकृति) प्राप्त करनी होगी। इसके लिए पंचायतों को आबादी के अनुपात से धन आवंटित किया जाएगा। इसमें से 15 प्रतिशत राशि स्थायी महत्व की परिसम्पत्तियों की मरम्मत पर खर्च किया जाएगा। परन्तु ध्यान यह रखना होगा कि कम से कम साढ़े 22 प्रतिशत धन अनुसूचित जातियों और जनजातियों को प्रत्यक्ष रूप से लाभ पहुंचाने के लिए खर्च हो। इसी तरह कम से कम तीन प्रतिशत धन विकलांगों के कल्याण पर खर्च किए जाएं।

जवाहर ग्राम समृद्धि योजना पर खर्च होने वाली 75 प्रतिशत धनराशि केन्द्र सरकार देगी और 25 प्रतिशत राज्य सरकार। इस योजना में ठेकेदार लगाए जाने पर रोक लगा दी गई है। ग्राम पंचायतों पर यह भी पाबंदी लगाई गई है, वह अपनी सभी योजनाओं पर ग्रामवासियों की आम सभा यानी ग्राम सभा की स्वीकृति लें। यह भी निर्देश दिया गया है कि ग्राम सभा की बैठक साल में कम से कम चार बार बुलाई जाए। इसके लिए अच्छी तरह से सूचना दी जाए और यह निर्धारित स्थान पर बुलाई जाए। कोई काम गुप–चुप न किया जाए। सभा में महिलाओं और निर्धनों की उपस्थिति सुनिश्चित की जाए।

स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना

चौथी से आठवीं पंचवर्षीय योजना की अवधि में ग्रामीण गरीबों को अपना रोजगार चालू करने के लिए कई तरह की सहायता समन्वित ग्रामीण विकास योजना, ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना, ग्रामीण महिला और बाल विकास योजना, कारीगरों की उन्नत औजारों देने की योजना, दस लाख कुओं की योजना, गंगा कल्याण योजना आदि के तहत दी जा रही थी। इन सभी योजनाओं को मिलाकर पहली अप्रैल 1999 से *स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना* घोषित की गई। इसके तहत निर्धन व्यक्तियों/परिवारों को छोटे–छोटे रोजगार शुरू करने के लिए कुल लागत का 70 प्रतिशत ऋण और 30 प्रतिशत अनुदान दिया जाएगा। इसके पहले उन्हें अपने क्षेत्र में उपयुक्त रोजगार के चयन में मदद दी जाएगी। और उनके उत्पादों की बिक्री की व्यवस्था की जाएगी। लक्ष्य यह रखा गया है कि अपना रोजगार शुरू करने वाले लोग तीन वर्ष के अन्दर गरीबी की रेखा के काफी ऊपर उठ जाएं।

सरकार ने यह भी निर्देश दिया है कि स्वरोजगारियों के चयन करते हुए इस बात पर ध्यान रखा जाए कि 50 प्रतिशत स्वरोजगारी अनुसूचित जातियों/जनजातियों के हों। चालीस प्रतिशत महिलाएं और तीन प्रतिशत विकलांग हों।

अनुसूचित जातियों जनजातियों के स्वरोजगार को 50 प्रतिशत अनुदान दिया जाएगा। किन्तु यह राशि दस हजार रुपये से अधिक नहीं होगी। समूह बनाकर अपना रोजगार शुरू करने वाले समूह को भी लागत का 50 प्रतिशत तक अनुदान दिया जाएगा और यह राशि सवा लाख रुपये तक होगी। स्वरोजगारियों को प्रशिक्षण देने के लिए जिले के तकनीकी विद्यालयों और स्वयंसेवी संगठनों की सहायता सुलभ की जाएगी। योजना–प्रतिवेदन बनाने में उन्हें बैंकों का सहयोग सुलभ होगा।

नवयुवक इस योजना का पूरा–पूरा लाभ उठाने के लिए जिला ग्रामीण विकास एजेंसी से सम्पर्क कर सकते हैं।

सुनिश्चित रोजगार योजना

यह योजना 1993 में ग्रामीण श्रमिकों को गैर–कृषि मौसम में काम देने के उद्देश्य से कुछ जिलों में शुरू की गई थी, अब यह सारे देश में लागू कर दी गई है। इसका कार्यान्वयन जिला परिषद् के माध्यम से किया जाता है।इसके तहत 1998–99 में केन्द्र सरकार ने 1990 करोड़ रुपये का प्रावधान किया। किन्तु राज्य सरकारें केवल 1571.97 करोड़ रुपये खर्च कर सकीं।

इस योजना के तहत 70 प्रतिशत धनराशि प्रखंड कार्यालय के माध्यम से खर्च की जाती है तथा 30 प्रतिशत राशि जिला परिषद द्वारा।

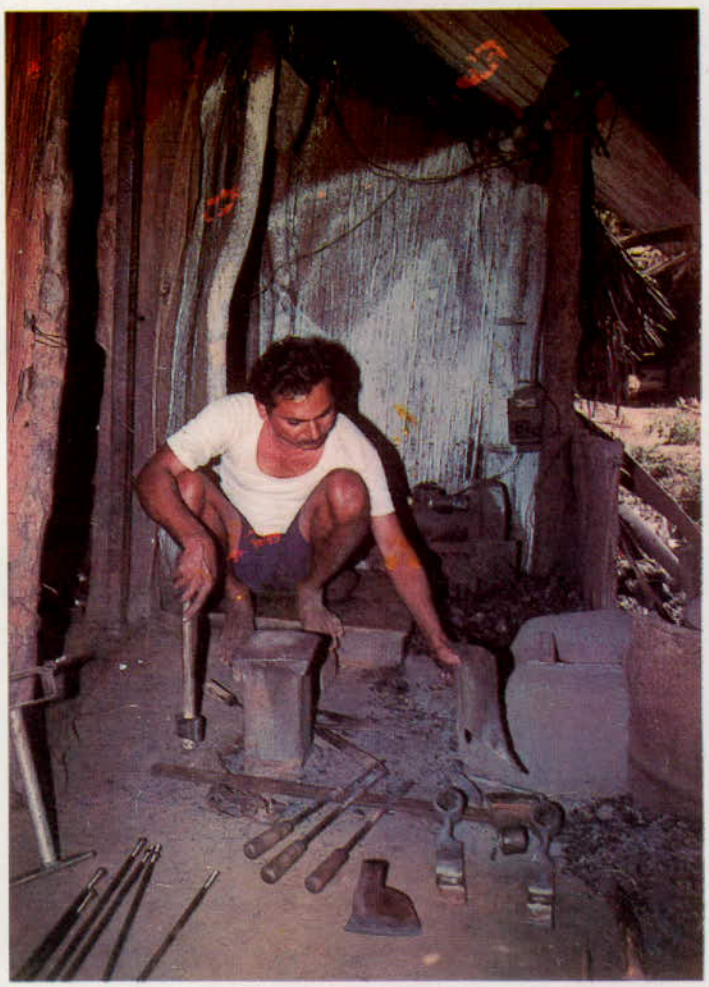

खेती के औजार बनाना ग्रामीण युवकों के लिए आकर्षक व्यवसाय

जिला परिषद् एक से अधिक प्रखंड को लाभ पहुंचाने वाली योजनाओं पर काम कराती है।

ग्रामीण आवास योजना

जवाहर रोजगार योजना के तहत 1985 के आरंभ में इंदिरा आवास योजना 1996 से एक स्वतंत्र योजना के रूप में चालू है। इसके तहत मार्च 1999 तक देश में करीब 53 लाख आवास, गरीबी की रेखा के नीचे के परिवारों के लिए बनाए जा चुके थे। इस योजना के पुनर्गठन पर अभी विचार किया जा रहा है। इस बीच सरकार ने अधिकतम 32 हजार रुपये वार्षिक आय वाले परिवारों के लिए एक नई आवासीय योजना गत वर्ष पहली अप्रैल से शुरू की है। इसके तहत अपना मकान बनानेवालों को 40 हजार रुपये तक का ऋण और दस हजार तक का अनुदान (पहाड़ी क्षेत्रों में 11 हजार तक) दिया जाएगा। इसके तहत ग्रामीणों को आवास बनाने के लिए नवीन प्रौद्योगिकी सुलभ की जाएगी, स्वच्छ शौचालय और निर्धूम चुल्हे बनाने के लिए प्रेरित किया जाएगा। साथ ही, स्वयंसेवी संगठनों को ग्रामीण क्षेत्रों में 'आदर्श आवास प्रदर्शन केन्द्र' स्थापित करने के लिए 15 लाख रुपये तक का अनुदान दिया जाएगा।

केन्द्र सरकार ने समग्र आवास योजना के नाम से एक अन्य योजना शुरू की है, जिसका मुख्य उद्देश्य है, ग्रामीण क्षेत्रों में आवास की नई प्रौद्योगिकी का प्रसार और आधुनिक बस्तियों के निर्माण को बढ़ावा देना। इन योजनाओं के लागू होने से ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर भी बढ़ेंगे।

निम्न कोटि की भूमि का विकास

देश की लगभग एक तिहाई भूमि घटिया किस्म की है। कुछ बंजर और मरुभूमि है। इन्हें कृषि और बागवानी के योग्य बनाने के लिए अनेक तरह की योजनाएं लगभग दो दशक से जारी हैं। इसे और प्रभावी बनाने के प्रयास किए जा रहे हैं।

पेयजल

देश में अब केवल 43 हजार गांव बाकी रह गए हैं जहां शुद्ध पेयजल का अभाव है। इन गांवों में दो वर्षों तक शुद्ध जल सुलभ करने का लक्ष्य रखा गया है।

ग्रामीण विकास मंत्रालय की इन योजनाओं से गांवों में रोजगार के अवसर जरूर बढ़ेंगे। फिर भी शिक्षित बेरोजगारों की समस्या बनी रहेगी। शिक्षित युवकों को काम देने के लिए सरकार ने प्रधानमंत्री रोजगार योजना की घोषणा की थी। उसके तहत प्रत्येक शिक्षित बेरोजगार को एक लाख रुपये तक का बैंक ऋण रियायती दर पर देने का प्रावधान था। किन्तु बैंको ने इसमें यथेष्ट रुचि नहीं दिखाई, क्योंकि ऋणों की वसूली की उन्हें कोई गारंटी नहीं मिली। सरकार को यह भरोसा था कि बैंक अपने व्यावसायिक बुद्धि का इस्तेमाल करेंगे और जिस प्रकार से वे उद्योगपतियों और व्यावसायिकों को उनकी योजना के आधार पर ऋण देते हैं, शिक्षित बेरोजगारों को भी देंगे।

ग्रामीण बेरोजगारों को अपनी प्रोजेक्ट–रिपोर्ट (योजना का प्रारूप) बनाने में कठिनाई न हो, इसके लिए केन्द्रीय लघु उद्योग आयुक्त ने विभिन्न क्षेत्रों में सफलतापूर्वक स्थापित किए जाने योग्य लगभग 500 प्रोजेक्ट रिपोर्ट तैयार कर सभी जिला उद्योग कार्यालयों को भेजी थीं। इसका भी अपेक्षित उपयोग नहीं हुआ। स्वयंसेवी संगठनों का ध्यान इस ओर जाना चाहिए। इस योजना के तहत लाखों युवकों को काम मिल सकता है। इसलिए सरकार को भी इस पर अपना ध्यान केन्द्रित करना चाहिए।

देश के इस्पात खान, सीमेंट, अल्यूमिनियम, कागज, वाहन रंग–रोगन, कपड़ा, टायर दवाइयां आदि उद्योगों का असाधारण विस्तार हुआ है। ऊर्जा उत्पादन और अंतरिक्ष की खोज में भी देश की उपलब्धियां अन्य देशों के लिए ईर्ष्या का कारण है। भारत में कम से कम 30 अनुसंधानशालाएं विश्व–स्तरीय सिद्ध हुई है। उदारीकरण की नई आर्थिक नीति के कारण देश में विदेशी पूंजी–निवेश बढ़ रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी (कम्प्यूटर) के क्षेत्र में भारत संसार का एक अग्रणी देश बन गया है। किन्तु, दुर्भाग्य की बात यह है कि जिस रफ्तार से पूंजी–निवेश हो रहा है अथवा उत्पादन बढ़ रहा है रोजगार का सृजन उस अनुपात में नहीं हो रहा है।

सन् 1991–92 में लगभग 60 लाख रोजगार के अवसर सृजित हुए थे जबकि 1998–99 में केवल 30 लाख। रोजगार सृजन दर में इस गिरावट को रोकने के लिए सरकार को प्रभावी कदम उठाने होंगे। ऐसा नहीं हुआ तो गरीब और अमीर के बीच बढ़ती हुई खाई लगातार चौड़ी होती जाएगी और समतापूर्ण समाज के निर्माण का स्वप्न, स्वप्न ही बना रहेगा।

उत्पादन के अवसर पैदा करने की सबसे अधिक क्षमता कृषि में है। किन्तु कृषि की विकास दर आर्थिक विकास की औसत दर से आधी है। आठवीं योजना के दौरान औसत विकास दर 5.92 प्रतिशत आंकी गई है। इसमें कृषि की विकास–दर केवल साढ़े तीन प्रतिशत थी, जबकि उद्योग की 7.24 प्रतिशत रही।

कृषि विकास की इस दर को बढ़ाना होगा। इसके लिए सिंचाई का विस्तार करना होगा। सरकार को अपने अनुत्पादक खर्चों में कटौती करके सिंचाई योजनाओं पर अधिक धन लगाना होगा।

इसी तरह गांवों में नई प्रोद्योगिकी के प्रसार में होंगे कारखाने को लगाने होंगे। विश्वविद्यालयों को भी गांवों में जन–जागृति फैलाने की जिम्मेदारी दी जानी चाहिए।

सरकार के सभी मंत्रालयों को ग्रामीण विकास प्रकोष्ठ की स्थापना करना चाहिए तथा अपनी रिपोर्ट में ग्राम–विकास संबंधी कार्यों का विशेष उल्लेख करना चाहिए। बिजली और दूर–संचार विभाग द्वारा इस दिशा में उल्लेखनीय काम हुआ है। किन्तु बिजली उत्पादन की दर में वृद्धि के बिना गांवों के विद्युतीकरण की योजना विफल साबित होगी। इसी तरह दूर–संचार विभाग ने देश के प्रायः सभी पंचायतों में सार्वजनिक टेलीफोन तो लगा दिए हैं किन्तु उनमें आधे भी काम नहीं कर रहे हैं।

स्वास्थ्य मंत्रालय ने प्रत्येक 5,000 की आबादी पर एक स्वास्थ्य उपकेन्द्र की स्थापना कर दी है। इसी प्रकार शिक्षा विभाग ने लगभग हर गांव में प्राथमिक विद्यालय की स्थापना कर दी है । किन्तु इन स्वास्थ्य उपकेन्द्रों में दवा शायद ही कभी मिलती है। प्राथमिक विद्यालयों में जहां चार अध्यापकों

की जरूरत होती है वहां दो भी नहीं हैं। स्वभावतः परिवार नियोजन का लक्ष्य पूरा नहीं हो रहा है। आबादी की वृद्धि जारी है। इसमें गरीब तबके में आबादी की वृद्धि की दर अधिक है। इसे रोकने के लिए ठोस कदम उठाने की जरूरत है।

ग्रामीण विकास की सबसे अधिक जिम्मेदारी नवगठित ग्राम पंचायतों को दी गई है। किन्तु राज्य सरकारें उन्हें पर्याप्त वित्तीय साधन नहीं दे रही हैं। जहां दे भी रही हैं, मनमाने तौर पर। ग्राम पंचायतों को जहां राज्यों के राजस्व का चालीस प्रतिशत दिया जाना चाहिए था, राजस्थान और असम सरकारें तीन प्रतिशत भी देना नहीं चाहतीं। उत्तर प्रदेश सरकार भी केवल 3 प्रतिशत देना चाहती है। मध्य प्रदेश सरकार इससे भी कम देना चाहती है। सबसे अधिक आन्ध्र प्रदेश सरकार ने (11 प्रतिशत) देना मंजूर किया है।

इससे साफ प्रकट होता है कि ग्राम पंचायतों को सरकार की प्राथमिक इकाई के रूप में विकसित करने की 73वें संविधान संशोधन अधिनियम की मंशा पूरी नहीं हो रही है। ग्राम पंचायतों को वित्तीय साधन देने का मामला राज्यों पर छोड़ देने के फैसले पर फिर से विचार किया जाना चाहिए।

ग्रामीण विकास के मार्ग में इन अवरोधों को दूर करना होगा तभी सभी ग्रामवासियों को स्वराज का सच्चा सुख मिल सकेगा।

गांवो की समृद्धि के लिए संविधान के चौथे अध्याय में (राज्य की नीति के निर्देशक तत्व) नीति संबंधी कुछ निर्देश दिए गए हैं। इनमें 14 वर्ष तक के सभी बालकों की शिक्षा अनिवार्य करने, नागरिकों के पोषाहार–स्तर में सुधार लाने, कामगारों को निर्वाह योग्य मजदूरी सुलभ करने और उनका जीवन–स्तर उन्नत करने, वैज्ञानिक खेती को बढ़ावा देने, पशु–पालन उद्योग के आधुनिकीकरण और पर्यावरण के संरक्षण के निर्देश शामिल है।

इन निर्देश की उपेक्षा हुई है। ऐसी अवस्था में गांधी जी के सपनों का वह भारत नहीं बन पा रहा, जिसे गरीब भी अपना समझे और इसके निर्माण में भागीदार हों। लेकिन उस भारत का उदय बहुत दूर भी नहीं कहा जा सकता, क्योंकि जनता जाग चुकी है। गत 26 जनवरी को संसद के केन्द्रीय कक्ष में राष्ट्रपति श्री. के. आर. नारायणन ने उसी जनता की आवाज मुखर करके पूछा कि राष्ट्रीय विकास का लाभ दुर्बल वर्ग तक क्यों नहीं पहुंचा। इसके लिए दोषी कौन है? हमारा संविधान या हमारा नेतृत्व। नेतृत्व को इसका जबाव देना होगा। और, वह जवाब होगा गरीबी और बेरोजगारी दूर करने की दिशा में ठोस कदम के रूप में। ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है। ❑

(पृष्ठ 25 का शेष) **बजट में ग्रामीण विकास को प्राथमिकता**

जाएगा। इसका उद्देश्य राष्ट्रीय संसाधनों तक महिलाओं की पहुंच बढ़ाना और आर्थिक विकास की मुख्यधारा में उनका अधिकारपूर्ण स्थान सुनिश्चित करना है। इस कार्य के लिए एक कार्यदल गठित किया जाएगा जो अर्थव्यवस्था में महिलाओं की भूमिका से सम्बन्धित सभी मौजूदा कानूनों और सरकारी योजनाओं की समीक्षा करेगा। इससे ग्रामीण महिलाओं की स्थिति में सुधार आने की आशा है।

नई राष्ट्रीय जनसंख्या नीति को कार्यान्वित करने के लिए बजट में अगले वर्ष के लिए 3,520 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है जबकि 1999–2000 में 2,920 करोड़ रुपये की व्यवस्था की गई थी। शहरी लोगों के साथ–साथ ग्रामवासियों को भी इसका लाभ मिलेगा। बजट में भारतीय चिकित्सा पद्धति और होम्योपैथी को बढ़ावा देने के लिए योजना आवंटन दुगना कर दिया गया है। इससे गांवों में स्वास्थ्य सेवाएं बेहतर होंगी। गांवों के लिए वनों का बड़ा महत्व है। बजट मे वानिकी कार्यक्रम और पर्यावरण की रक्षा के लिए उचित राशि की व्यवस्था की गई है। सरकार की मान्यता है कि ग्रामीण पर्यावरण की सुरक्षा पर जोर देने से समाज के सर्वाधिक निर्धन लोगों का जीवन स्तर ऊंचा उठ सकेगा।

बजट में लघु उद्योगों और ग्रामोद्योगों को प्रोत्साहन देने के लिए जो कदम उठाए गए हैं वे भी सराहनीय हैं। खादी और ग्रामोद्योग आयोग ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर रोजगार उपलब्ध कराने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। वित्त मंत्री ने आश्वासन दिया है कि सरकार खादी और ग्रामोद्योग क्षेत्र को उचित सहायता देती रहेगी ताकि उसके उत्पादों के स्तर में सुधार हो सके और घरेलू बाजार में बिक्री तथा निर्यात को बढ़ावा मिल सके।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने में सरकारी बैंकों, वाणिज्यिक बैंकों और क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की महत्वपूर्ण भूमिका है। वित्त मंत्री ने बजट में ऐसे उपाय किए हैं जिनसे ग्रामीण को ऋण प्राप्त करने में अधिक सुविधा होगी। नाबार्ड और सिडबी 2000–2001 में नन्हे उद्योगों के विकास हेतु एक लाख अतिरिक्त समूहों की सहायता करेंगे। पिछले बजट में 50,000 स्व–सहायता समूहों को बैंकों के साथ सम्बद्ध करने की व्यवस्था की गई थी। वित्त मंत्री की यह घोषणा महत्वपूर्ण है कि ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और अन्य पिछड़ी जातियों सहित कमजोर वर्गों द्वारा स्थापित नन्हे उद्यमों के संवर्धन पर विशेष जोर दिया जाएगा। ग्रामीण सहकारी ऋण व्यवस्था को अधिक गतिशील बनाने के लिए नाबार्ड में एक निधि की स्थापना का भी प्रस्ताव है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों के महत्व को देखते हुए उनको और सुदृढ़ करने के प्रयत्न किए जाएंगे।

इसमें कोई संदेह नहीं है कि वित्त मंत्री द्वारा प्रस्तुत बजट से गांवों के सर्वांगीण विकास को गति मिलेगी। बजट प्रस्ताव गरीबी और बेराजगारी के निवारण में काफी सहायक सिद्ध होंगे। बुनियादी सुविधाएं सुलभ होने से ग्रामवासी बेहत ढंग से रह सकेंगे। पर सरकार को इस बात की निगरानी रखनी होगी कि ग्रामवासियों के लिए आवंटित राशि उन तक सही ढंग से पहुंच जाए। प्रशासन को चुस्त–दुरूस्त कर और ग्राम विकास की सभी योजनाओं में ग्राम पंचायतों की भागीदारी सुनिश्चित करके ही ग्रामीण जीवन को खुशहाली की ओर अग्रसर किया जा सकता है। ❑

बेरोजगारी की समस्या : समाधान की चुनौती

प्रो० रामेश्वर मिश्र पंकज*

विकास की पाश्चात्य शैली जो हमने अपना रखी है उससे बेरोजगारी जैसी विकट समस्या का समाधान आसान नहीं दिखता है। इसमें प्रतिस्पर्धा है, दूसरों को पछाड़ कर आगे बढ़ने की प्रवृत्ति है, छीना झपटी है, यह व्यक्तिवाद पर आधारित है। ये विचार व्यक्त करते हुए विद्वान लेखक ने गांधीजी द्वारा प्रतिपादित शैली अपनाने पर जोर दिया है। उसके अनुसार विकास का लक्ष्य समूचे राष्ट्र का विकास होना चाहिए। पूरे समाज में परस्पर पूरकता की भावना हो। दूसरों के सुख–दुख की चिंता समाज में हो। रोजगार देना समाज का दायित्व हो। परम्परागत हुनरों और कौशलों को बढ़ावा मिले। गांवों में पंचायतें रोजगार उपलब्ध कराने का जिम्मा लें। वनों का प्रबंध आदिवासियों पर छोड़ा जाए। सरकार केवल इसके लिए उपयुक्त वातावरण तैयार करे।

बेरोजगारी की समस्या पर विचार करते समय सामान्यतः इसे इन दिनों प्रचलित प्रतिमानों के सन्दर्भ में ही देखा–समझा जाता है। इन दिनों रोजगार की जो धारणाएं प्रचलित हैं, उनके सन्दर्भ में व्यक्तियों समूहों और समुदायों को बेरोजगार माना जाता है। इसमें जीविका के किसी भी साधन को अपना लेना ही रोजगार है तथा उससे वंचित रह जाना बेरोजगारी है। इस तरह बेरोजगारी की समस्या को देश और समाज की अन्य समस्याओं से काट कर देखा जाता है।

उदाहरण के लिए इन दिनों शासकीय नौकरियों सार्वजनिक उद्यमों, पुलिस, सेना, न्यायपालिका आदि में कुल लगभग तीन करोड़ लोगों को रोजगार प्राप्त है। गैर सरकारी उद्यमों, कारखानों, दुकानों, व्यापक–धंधों और नौकरियों में लगभग सात करोड़ लोगों को रोजगार प्राप्त है। घरेलू कार्यों में लगभग 35 करोड़ स्त्री–पुरुष लगे हैं। लगभग पन्द्रह करोड़ लोग कार्य की असमर्थ दशा में हैं – वृद्ध, विकलांग, गम्भीर रोगी आदि। लगभग 15 करोड़ लोग कम उम्र के हैं – बच्चे, विद्यार्थी आदि। इस प्रकार लगभग 25 करोड़ लोगों के समक्ष रोजगार की समस्या है। इसमें से लगभग 10 करोड़ लागों के पास अल्पकालिक काम है यानी वे अर्ध बेरोजगार हैं। लगभग 15 करोड़ लोग पूर्णतः बेरोजगार हैं। इन्हें क्या रोजगार सुलभ कराया जाए, यह समस्या है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारें कुल मिलाकर 50 लाख से अधिक लोगों को सरकारी स्तर पर प्रतिवर्ष रोजगार सुलभ नहीं करा सकती जिसका अर्थ है – सरकारों को अभी के बेरोजगारों को रोजगार सुलभ कराने के लिए उस स्थिति में कम से कम 30 वर्ष चाहिए, जब जनसंख्या में बिल्कुल वृद्धि न हो तथा गैर सरकारी स्तर पर कार्यरत लोगों में से कोई बड़ी संख्या बेराजगार न हो। दोनों ही असम्भव स्थितियां हैं। जनसंख्या कुछ करोड़

* निदेशक, अवेकनिंग सेंटर फार डेवलपमेंट स्टडीज़, वाराणसी

तो अवश्य बढ़ेगी 30 वर्षों में। साथ ही गैर सरकारी कामों में लगे लोग कभी भी बड़ी संख्या में बेरोजगार हो सकते हैं। मशीनीकरण के दौर में छंटनी और साथ ही नए रोजगार–अवसरों का व्यापक अभाव सुनिश्चित है। तीस वर्षों में आबादी कम से कम 150 करोड़ हो जाने की सम्भावना है। अतः बेरोजगारी भी बढ़नी ही है। रोजगार के नए अवसरों की गुजांइश किन–किन क्षेत्रों में निकाली जा सकती है? भारत में कृषि–क्षेत्र की सकल घरेलू उत्पाद में लगभग 35 प्रतिशत की भागीदारी है। निर्माण और बिजली उत्पादन क्षेत्र की लगभग 26 प्रतिशत की हिस्सेदारी है। भंडारण, परिवहन तिजारत, संचार और वित्त के क्षेत्र का लगभग 14 प्रतिशत हिस्सा है। विज्ञापन और प्रचार माध्यम, प्रबन्धन, विपणन तथा परामर्श के क्षेत्र में रोजगार के नए अवसर तेजी से बढ़ रहे हैं। कृषि–क्षेत्र को यदि कुशलता से बढ़ाया जाए तो उसमें भी रोजगार के अवसरों के विस्तार की प्रचुर सम्भावनाएं हैं। पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा आदि में कृषि–क्षेत्र में, विशेषकर गेहूं की आधुनिक खेती के मामले में वैज्ञानिक कौशल के साथ कृषि–कार्य विकसित करने पर रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि सम्भव है। इसी प्रकार, गंगा के मैदान तथा नर्मदा नदी के क्षेत्र में सब्जियों और फलों के आधुनिक ढंग से उत्पादन और भंडारण के क्षेत्र में भी रोजगार के नए मौके निकाले जा सकते हैं और निकालने चाहिए। भंडारण और खाद्य–प्रोसेसिंग प्रणालियों के विकास द्वारा भी कुछ रोजगार बढ़ाया जा सकता है। कीटनाशक कीटनियंत्रण, शीतन, रोगाणुरहित पैकेजिंग, आदि के क्षेत्रों में भी विस्तार होना है। पेट्रोलियम, उर्वरक तथा विविध रासायनिक उद्योगों के क्षेत्र में भी काफी सम्भावनाएं हैं। अनूठे जैव–वैविध्य से सम्पन्न भारत में जैव–प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में भी रोजगार के प्रचुर अवसर सामने आ सकेंगे बशर्ते हम यूरोपीय प्रौद्योगिकी से स्वतंत्र अपनी प्रौद्योगिकी विकसित करने की पहल करें। पर्यटन–विकास द्वारा भी रोजगार के अवसरों का विकास होगा।

इसके अतिरिक्त सुरक्षा–सम्बन्धी सेवाओं में भी भारत को बहुत वृद्धि करनी होगी और करनी चाहिए। अतः उसमें भी रोजगार के अवसर हैं।

विज्ञापनों तथा प्रसार– माध्यमों की दुनिया में प्रौद्योगिकियों का एक भरापूरा संसार ही विकसित हुआ है और हो रहा है। कपड़ों और परिधानों (वस्त्रों) के क्षेत्र में भी नए–नए रोजगार–अवसरों की भरपूर गुंजाइश है।

पैकेजिंग के क्षेत्र में रोजगार की प्रचुर संभावनाएं हैं

विदेशी कर्जों का जाल

परंतु बेरोजगारी की स्थिति को इस प्रकार अलग–अलग देखना ही गलत है। बेरोजगारी, गरीबी, असंतोष, उग्रवाद, आतंक – वाद, नशेबाजी, हिंसा, विक्षोभ, भ्रष्टाचार, पक्षपात, सामाजिक अन्याय आदि को अलग–अलग देखना अमूर्त्तन (एब्स्ट्रैक्शन) की प्रचलित पद्धति का परिणाम है। यह पद्धति वस्तुतः "विशेषज्ञों की एक फौज द्वारा समाज पर सम्पूर्ण

नियंत्रण तथा राष्ट्रीय संसाधनों के पूर्ण नियंत्रित उपयोग और मनमाने पुनर्वितरण की पद्धति है।"

भारत इस पद्धति में क्यों फंसा है? क्योंकि वह अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से कर्ज तथा सहायता का इच्छुक है। वह यानी सम्पूर्ण भारत नहीं वरन् भारत का सबल–सम्पन्न वर्ग। आज तक जो भी कर्ज मिले हैं और जो सहायताएं मिली हैं, उनको हमें मय ब्याज के अदा करना पड़ रहा है। अतः यह तो स्पष्ट है कि हमारे पास

दूसरी योजना में 1,090 करोड़ रुपयों का तथा तीसरी पंचवर्षीय योजना में 2,390 करोड़ रुपयों का विदेशी ऋण लेना पड़ा। चौथी पंचवर्षीय योजना में विदेशी ऋण की यह राशि बढ़कर 40,184 करोड़ रुपये हो गई। इसमें से 2,445 करोड़ रुपये केवल विदेशी ऋण का ब्याज और ऋण की किश्त चुकाने के लिए वापस विदेशियों को ही दे दिए गए।

ब्याज और ऋण किश्तों के रूप में धन–भुगतान की बड़ी शक्ति है। यह भी स्पष्ट है कि सौ वर्षों तक लगातार ब्याज और कर्ज की किश्त हम देते ही रहेंगे और तब भी करोड़ों भारतीय बेरोजगार रहेंगे, करोड़ों लोग गरीब रहेंगे तथा करोड़ों कंगले और बेसहारा रहेंगे। अतः हमारे सबल–समर्थ वर्ग द्वारा विदेशी कर्जों की ऐसी नीति अपनाना न तो किसी विवेक का परिणाम है, न करुणा का, न सामाजिक न्याय की व्यग्रता का।

पहली पंचवर्षीय योजना में विदेशी कर्ज केवल 28 करोड़ रुपये का यह कहकर लिया गया था कि इससे विकास की उड़ान भरने में भारत को आवश्यक सहायता मिलेगी और शीघ्र ही यह ऋण ब्याज सहित चुका दिया जाएगा। अगली पंचवर्षीय योजनाओं में हम ऋण अदा करने की स्थिति में तो पहुंचे नहीं, उल्टे दूसरी योजना में 1,090 करोड़ रुपयों का तथा तीसरी पंचवर्षीय योजना में 2,390 करोड़ रुपयों का विदेशी ऋण लेना पड़ा। चौथी पंचवर्षीय योजना में विदेशी ऋण की यह राशि बढ़कर 40,184 करोड़ रुपये हो गई। इसमें से 2,445 करोड़ रुपये केवल विदेशी ऋण का ब्याज और चुकाने के लिए वापस विदेशियों को ही दे दिए गए। इस प्रकार तीसरी पंचवर्षीय योजना में लिए गए कुल विदेशी ऋण से भी अधिक रकम इस बार विदेशी कर्ज का ब्याज और किश्त चुकाने में दी गई तुर्रा यह कि हर बार नारा स्वावलम्बन की ओर बढ़ने का ही दिया जाता रहा। छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान तो विदेशी कर्जे के ब्याज और किश्त के रूप में 4,748 करोड़ रुपये अदा किए गए। यानी पहली, दूसरी और तीसरी पंचवर्षीय येजनाओं में कुल विदेशी कर्ज जितना लिया था, उससे ज्यादा रकम इस बार कर्ज की किश्त और ब्याज चुकाने में दी गई। स्पष्ट है कि विदेशी ऋण–सहायता के नाम पर हमने शीघ्र विकास के बहाने जो कर्ज उठाया, वह एक बड़ी गलती था। विकास कुछ धीरे ही होता पर कर्ज की रकम हम पर न चढ़ती तो अधिक से अधिक यही होता कि हमारे सम्पन्न वर्ग को इतनी अधिक सुख–सुविधाएं न मिली होतीं तथा विदेशी ऋण लेकर विकास का प्रबन्ध कर रहे प्रबन्धक–वर्ग (प्रशासकों तथा मंत्रियों आदि) को विकास के मद की बड़ी रकम प्रबन्ध के मद में खर्च करने को न मिलती। पर देश की गरीबी आज से तनिक भी अधिक न होती और ऋण का भार भी ज़रा सा भी न होता।

बाद में तो हम अंतर्राष्ट्रीय संस्थाओं से अधिकाधिक ऋण लेते चले गए और चले जा रहे हैं। वस्तुतः उदारीकरण के नाम पर भी ऋण लेने का ही क्रम जारी है। उसके साथ–साथ यूरोपीय–अमरीकी प्रौद्योगिकी की विवेकविहीन नकल जारी है, जिसके कारण हम बौद्धिक रूप में यूरोप–अमरीकी अधीनता में जीने को विवश हैं। यूरोप जैसी औद्योगिक क्रांति को अपना लक्ष्य घोषित कर उसके लिए विदेश से ही सारी तकनीकी उधार लेना और विदेश से ही कर्जा लेना हमें आर्थिक, तकनीकी और बौद्धिक अधीनता के गर्त्त में डूबो चुका है। यह सारा ही काम बेरोजगारी और गरीबी मिटाने के नाम पर हुआ है तथा तीव्र वृद्धि और तीव्र विकास के प्रलोभन में हुआ है। परंतु यूरोप द्वारा साम्राज्यवादी लूट और बर्बर बिनाश–योजना के द्वारा जो विकास सम्भव हुआ, वैसा ही विकास व्यापक विनाश तथा बर्बर लूट के बिना हम कैसे कर सकेंगे, यह कभी विचार और बहस का विषय ही नहीं बना। स्पष्ट है, हम आंतरिक उपनिवेश बनाकर यानी बेरोजगारी और कंगाली बढ़ाकर ही यूरोप जैसा विकास कर सकते हैं। अतः बेरोजगारी बढ़ती जाती है।

स्पष्ट है कि विकास के नाम पर जो अंधी नकल की गई वह उस विषय में अधिक विचार न कर, विदेशी विद्वानों द्वारा सुझाई गई और उन विदेशी विद्वानों के भारतीय शिष्यों और अनुयायियों द्वारा बिना विचारे अपना ली गई चीज है। इस प्रकार इन योजनाओं का परिणाम बेरोजगारी मिटाना न रहकर विदेशियों की बौद्धिक अधीनता, प्रौद्योगिक अधीनता तथा आर्थिक अधीनता में धंसते चले जाना हो गया। इस रास्ते से बेरोजगारी कभी भी नहीं मिटती।

बौद्धिक–आध्यात्मिक दीनता मिटानी चाहिए

यदि सचमुच बेरोजगारी मिटानी है तो हमें गांधी जी की दृष्टि की सहायता लेनी होगी। उस स्थिति में पूरी समस्या को सत्य की दृष्टि से समझना होगा, विदेशियों द्वारा प्रदत्त लक्ष्यों की विमूढ़ नकल की दृष्टि से नहीं। जो भी शासन, योजनाकार और समर्थ भारतीय लोग देश की बेरोजगारी मिटाना चाहते हैं, उन्हें

केवल राजकोष की सूजन, मात्र राजकोष का फूलते चले जाना राष्ट्रीय समृद्धि की कसौटी, पैमाना या लक्षण नहीं है। भुगतान–संतुलन, वृद्धि–दर, औद्योगिक क्रांति आदि भी राष्ट्रीय समृद्धि के पैमाने नहीं है।

पहले स्वंय की बौद्धिक–आध्यात्मिक दीनता मिटानी होगी। अपनी उस 'चेतना की बेरोजगारी' को मिटाने पर भारत के सबल वर्गों को पहले ध्यान देना चाहिए जो दिमाग से मानो ठलुआ बैठे हैं और हर विदेशी योजना, सुझाव तथा प्रस्ताव को पाकर उसी के हिसाब से नाचने लगते हैं। पहले कम्युनिस्टों के माडल को अपना कर राज्य–नियंत्रित समाजवाद अपनाया। फिर उसमें पूंजीवाद का झोल मिलाया। अब उदारीकरण तथा

वैश्वीकरण के यूरो–अमरीकी प्रस्ताव को उत्साह से, पर विवेक के बिना ही अपना लिया है। भारत के सबल वर्गों की बौद्धिक–आध्यात्मिक दीनता का भारत के निर्बल वर्गों की भौतिक–आर्थिक दीनता से सीधा सम्बन्ध है, इसे समझना होगा। गांधी जी से इसमें बहुत सहायता मिल सकती है।

विकास का उद्देश्य

गांधी–दृष्टि से समस्या को देखें तो सबसे पहले यह समझना होगा कि रोजगार–विकास और योजनाओं–सभी का उद्देश्य है – आंतरिक आनन्द, शान्ति, सन्तोष, परिवार–पोषण, समाज–पोषण, लोक–पोषण। धन स्वयं में लक्ष्य नहीं। वह धर्म का, सुख–शान्ति और आनन्द का साधन है।

अतः केवल उत्पादन–वृद्धि राष्ट्रीय समृद्धि नहीं है। देश के लोगों के इन्द्रिय–सुखों तथा ऐन्द्रिक उत्तेजनाओं की लिप्सा को बढ़ाने वाली चीजों का अमर्यादित उत्पादन राष्ट्रीय विपदा है, पाप है। ऐसा अमर्यादित और अविचरित उत्पादन दुःख का मूल है, सुख का कारण नहीं। विकास का लक्ष्य होना चाहिए–समस्त राष्ट्र को सबल बनाना। समस्त राष्ट्र तभी सबल हो सकता है, जब हम सब मर्यादामय जीवन जिएं। समाज परस्पर पूरकता की अनुभूति करें, परस्पर पोषण की प्रवृत्ति जगे, परस्पर कर्त्तव्य–निर्वाह का भाव तथा बोध दृढ़ हो, तभी राष्ट्र को सबल–समृद्ध कहा–माना जा सकता है। केवल राजकोष की सूजन, मात्र राजकोष का फूलते चले जाना राष्ट्रीय समृद्धि की कसौटी, पैमाना या लक्षण नहीं है। भुगतान–संतुलन, वृद्धि–दर, औद्योगिक क्रांति आदि भी राष्ट्रीय समृद्धि के पैमाने नहीं हैं। यदि औद्योगिक क्रांति से ही राष्ट्रीय समृद्धि होती तो जिन दिनों ब्रिटेन में औद्योगिक क्रांति हो रही थी, उन्हीं दिनों ब्रिटेन की राष्ट्रीय समृद्धि उसी क्रांति से हो जाती। परंतु सत्य यह है कि भारत की बर्बर लूट द्वारा ही ब्रिटेन समृद्ध हुआ है। औद्योगिक क्रांति द्वारा नहीं। इंग्लैण्ड के दर्जनों इतिहासकारों – हैरिस, ब्रिग्स, जोर्डन आदि प्रमुख विद्वानों ने बार–बार यह स्पष्ट किया है कि विदेशों की लूट से ही ब्रिटेन सम्पन्न बना। रानी ऐलिजाबेथ और जार्ज पंचम के शासन में करोड़ों पौंड की लूट विदेशों से लूटकर ब्रिटिश खजाने में पहुचाई गई। प्रसिद्ध ब्रिटिश सांसद विलियम डाबी ने ब्रिटिश सरकारी दस्तावेजों के आधार पर लिखा था कि ब्रिटेन की औद्योगिक बढ़त का मूल कारण कर्नाटक और बंगाल की विशाल लूट थी। प्लासी युद्ध जीतने के पहले तो ब्रिटेन में कोई समृद्धि थी ही नहीं, दीनता और अभाव ही था।

मद्रास में कार्यरत राजस्व बोर्ड के अध्यक्ष सलीवन ने कहा था कि "गंगा–तट में जो कुछ भी अच्छी चीजें हैं, उन्हें सोख कर हम लाकर थेम्स के तट पर उड़ेलते हैं, यही हमारी व्यवस्था का सार–तत्व है।" मांटगोमरी मार्टिन के अनुसार हिन्दुस्तान में ब्रिटिश खजाने में ले जाकर जमा की गई राशि केवल 50 वर्षों में ही 4 अरब 40 करोड़ पौंड से अधिक की थी।

> इस शिक्षा द्वारा उनका परम्परागत ज्ञान भी धीरे–धीरे लुप्त हो जाएगा। वनों की रक्षा, औषधियों–वनस्पतियों का दुर्लभ उपयोग पानी की सफाई, टूटी हड्डियों की जुड़ाई, सद्यः प्रसवा माता को शक्तिशाली औषधि देकर पुष्ट बना देना, जैव–तकनीकी का परम्परागत ज्ञान, संतोष और आनंद के पारम्परिक स्रोत और प्रणालियां आदि सब ज्ञान–रूप आधुनिक शिक्षा प्रणाली द्वारा क्रमशः नष्ट हो जाएंगे।

प्लासी के युद्ध के बाद, अंग्रेजों ने भारत के एक प्रांत बंगाल के केवल तीन जिलों–बर्धवान, मिदनापुर और एक अन्य जिले के कुल राजस्व में से केवल एक प्रकार के राजस्व – भू–राजस्व की वसूली कर उसे भारत के खजाने में न जमा कर इंग्लैंड के खजाने में जमा किया तो उससे ब्रिटेन के खजाने का पूंजी–भंडार (स्टाक आफ केपिटल) दुगुने से ज्यादा हो गया। ध्यान रहे, यहां पूंजी–प्रवाह की फ्लो आफ केपिटल की) बात नहीं हो रही है, स्वयं पूंजी–भंडार ही दुगुना हो गया। क्लाइव को जो लगभग 60 लाख पौंड की सौगातें 8 साल में निजी तौर पर दी गई थीं और हजारों ब्रिटिश अफसरों और कम्पनी अफसरों को जो करोड़ों ही नहीं, अरबों पौंड की सौगातें दी गईं, जिनसे वे निजी तौर पर समृद्ध हुए, सो तो अलग है ही। स्वयं ब्रिटिश सरकारी खजाने की समृद्धि भारत की लूट पर टिकी थी। भारत के स्वाधीन होते ही ब्रिटेन की आर्थिक–राजनैतिक हैसियत सिकुड़ते जाने का यही रहस्य है। अतः केवल औद्योगिक क्रांति से तो ब्रिटेन दरिद्र–कंगाल ही बना रहता है। अतः जो लोग केवल औद्योगिक संवृद्धि और आर्थिक वृद्धि द्वारा भारत में बेरोजगारी–गरीबी मिटाने का दावा कर रहे है। वे सच नहीं बोल रहे। शायद वे सच जानते ही न हों, तो यह अलग बात है।

वस्तुतः ब्रिटिश और ब्रिटिश भारतीय अर्थशास्त्री जो भाषा बोल रहे थे, वह वंचना तथा छल की भाषा थी। भारतीय समाज से वे जो ले रहे थे, वसूल रहे थे, उस 'सोशल कास्ट' की बात न कर वे जो समाज को मिल रहे लाभों भर की बात करते थे, उसका उद्देश्य लूट को छिपाना था। स्वतंत्र भारत के जनप्रतिनिधियों, प्रशासकों और विद्वानों को भारत की लूट की कोई जरूरत नहीं है इसलिए हमें भी सरकार या योजनाकारों द्वारा सबको रोजगार दिलाने का झूठा वादा नहीं करना चाहिए। यदि भारत के सम्पन्न–सबल लोग मर्यादित सुख–भोग में ही संतोष पाएं तथा सारे भारत के उद्धार का झूठा दावा छोड़ दें और स्वधर्म–पालन पर ध्यान दें तो भारत में बेरोजगारी की समस्या का समाधान सम्भव है।

रोजगार की अवधारणा में बदलाव जरूरी

इसके लिए रोजगार की चालू अवधारणा बदलनी होगी। आमदनी बढ़ाना, क्रय–शक्ति बढ़ाना, उपयोग की च्वाइसेस–सुलभ कराना, उपयोग के विकल्प सुलभ कराना, ऐच्छिक सुखभोगों में ही तुष्टि और उपलब्धि का अनुभव करना, जाब–सेटिसफेक्शन, टार्गेट–एचीवमेंट आदि रोजगार की चालू धारणाएं व्यक्तिवाद, देहेन्द्रिय–लिप्सावाद, संसार में नैतिक जीवन की असम्भावना (क्योंकि मनुष्य मूलतः और जन्मतः पापी है – ओरिजिनल सिन के कारण), स्व और पर के बीच अपरिहार्य विरोध, आदि आस्थाओं पर टिकी हैं। ये सभी सामान्य यूरो–पश्चिमी आस्थाएं हैं। इनको मानने पर,

नैतिकता की समस्या का समाधान किसी चर्च या पंथ या मसीहा की या मतवाद अथवा 'आइडियालाजी' के अधीन देश को लाकर उसका उद्धार करने का दावा करती हैं – सबको रोटी, सबको काम का सरकारी वायदा इसी झूठी आस्था पर आधारित है। विविध व्यक्तियों के मध्य प्रतिस्पर्धा को ही स्वाभाविक मानकर फिर व्यक्तियों द्वारा अपने पक्ष में संसाधनों का इकतरफा हस्तांतरण कराने के लिए राज्यतंत्र की शरण में जाया जाता है और राज्यतंत्र का सहारा लिया जाता है। ऐसी स्थिति में सबको रोजगार देने का वायदा एक झूठा वायदा भर होता है क्योंकि उपर्युक्त आस्थाओं का अनिवार्य परिणाम निम्नांकित हैं:

- मेरे रोजगार से मेरे परिवार के सिवाय, अन्य किसी को सुख मिले या दुख, यह मेरी चिंता का विषय नहीं। वैसी चिंता वहां तक केवल रखनी है, जहां तक वह कानून का मामला हो यानी दूसरों को प्रदूषण, भ्रष्टाचार, गैर कानूनी कार्यों आदि से कष्ट देने पर कानूनी कार्रवाई का जहां तक डर हो, वहीं तक चिंता करो। नीति–अनीति, पाप–पुण्य के विचार से रोजगार का कोई रिश्ता नहीं है।
- मेरी लूट तभी तक सही है, जब तक वह वैध है और जब तक मेरा काम राष्ट्रीय समृद्धि, राष्ट्रीय उत्पादवृद्धि, आर्थिक संवृद्धि आदि का अंग दिखती है अतः एक झूठा प्रोपेगंडा मेरी लूट को ढकने के लिए जरूरी है।
- लूट में प्रतिस्पर्धा है। अतः प्रतिस्पर्धी का दमन करना है। यह दमन झूठे प्रचार से तथा कानून के दुरुपयोग से ही सम्भव है। छल, तिकड़म, हिंसा, दमन आदि द्वारा प्रतिस्पर्धी को पछाड़ना ही मेरा लक्ष्य है, मेरी सफलता है।
- समाज में प्रतिष्ठा के लिए भी लूट जरूरी है, रौब के लिए भी। जबकि समाज में सच्ची प्रतिष्ठा आसान नहीं है। अतः रोजगार की सफलताएं भी व्यक्ति को भीतर से प्रसन्न नहीं रखतीं। फलस्वरूप तनाव, कुंठा, शरीर पर दबाव, मनोरोग आदि ऐसी सफलता के अनिवार्य अंग हैं।

रोजगार–सम्बन्धी इस आधुनिक दृष्टि के रहते, दूसरों का रोजगार छीनकर या दबाकर ही अपना रोजगार चलाया जाता है। अतः इस दृष्टि के रहते बेरोजगारी मिटनी असम्भव है।

वस्तुतः रोजगार सम्बन्धी दृष्टि सुख–दुःख–सम्बन्धी दृष्टि से जुड़ी है और सुख–दुःख–विवेक का सम्बन्ध शिक्षा से है। वर्तमान शिक्षा–तंत्र और शिक्षा–नीति में गहराई से परिवर्तन के बिना सबको रोजगार देना सम्भव ही नहीं है।

नई शिक्षा नीति की जरूरत

इसे थोड़ा स्पष्ट करें। जो 15 करोड़ सक्षम व्यक्ति बेरोजगार हैं, उनमें से लगभग 5 करोड़ वनवासी या तथाकथित आदिवासी समूहों के लोग हैं। लगभग 4 करोड़ अनुसूचित जातियों के लोग हैं। लगभग तीन करोड़ अन्य पिछड़े वर्गों के लोग है तथा लगभग तीन करोड़ द्विज–जातियों के लोग हैं। अब इन पांच करोड़ वनवासियों को यदि वर्तमान किस्म की शिक्षा दी गई और केवल वर्तमान रोजगारों में ही प्रशिक्षित किया जाता रहा तो न कभी इतने संसाधन जुट पाएंगे कि इन सबको शिक्षित और प्रशिक्षित किया जा सके, न ही सबको कभी रोजगार मिल पाएगा। फिर, इस शिक्षा द्वारा उनकी परम्परागत शान भी धीरे–धीरे लुप्त हो जाएगी। वनों की रक्षा, औषधियों–वनस्पतियों का दुर्लभ उपयोग, पानी की सफाई–टूटी हड्डियों की जुड़ाई, सद्यः प्रसवा माता को शक्तिशाली औषधि देकर पुष्ट बना देना, जैव–तकनीकी का परम्परागत ज्ञान, संतोष और आनंद के पारम्परिक स्रोत और प्रणालियां आदि सब ज्ञान–रूप आधुनिक शिक्षाप्रणाली द्वारा क्रमशः नष्ट हो जाएंगे। उनमें से जो विशेष शिक्षित होंगे वे विदेशी कम्पनियों के एजेंट बनकर कुछ समय तक लाखों कमाएंगे और सारा परम्परागत ज्ञान विदेशी कम्पनियों को सुलभ करा देंगे। इसके स्थान पर यदि इन वनवासियों के अपने ज्ञान और कौशल को पुष्ट करने वाली शिक्षा ही इन्हें स्वयं अपने लिए चलाने दी जाए, सरकार सहायता भर करे तथा बड़े व्यापारियों आदि को वनवासी क्षेत्रों में व्यापार केवल वनवासी–पंचायतों के जरिए ही करने दिया जाए तथा सामुदायिक जीवन की परम्परा को सुदृढ़ रखा जाए तो सभी 5 करोड़ वनवासी स्व–रोजगार में समर्थ हो सकते हैं, समृद्ध हो सकते हैं तथा सुव्यवस्थित सामाजिक–जीवन जी सकते हैं। सामाजिक वानिकी के वे सहज संचालक हैं। वन्य जीवन के वे विशेषज्ञ हैं। अभयारण्य आदि भी उनकी देखरेख में चलने चाहिए। वन–नीति उनसे पूछकर बननी–चलनी चाहिए। अपने स्थानीय राजस्व–स्रोतों का स्वयं उपयोग कर वे अनेक हुनर और कौशल विकसित कर सकते हैं। अपनी चीजों की कीमत आंकना उन्हें आ जाएगा, तो वे समृद्धि के नए–नए स्रोत तलाश लेंगे। अपने उत्सवों, अपने मेले–ठेलों को विदेशियों को सुलभ कराकर वे विदेशियों से, पर्यटकों से अच्छी आमदनी कर सकते हैं। पर इसके लिए वह शिक्षा–नीति तजनी होगी जो विदेशी ढंग के खान–पान, विदेशी ढंग के आराम, विदेशी ढंग के मनोरंजन और विदेशी स्थलों तथा प्राकृतिक दृश्यों को अधिक मूल्यवान मानना सिखाती है और भारतीयों में आत्महीनता का संचार करती है। पांच करोड़ वनवासियों का बहुतांश स्वयं अपने–अपने इलाकों में रोजगार रच सकता है – यदि नीति सही हो और संसाधन छीने न जाएं।

शिक्षा का स्वरूप बदलने पर तथा रोजगार संबंधी दृष्टि और धारणा बदलने पर परम्परागत हुनर और कौशल की प्रतिष्ठा बढ़ेगी और अधिकांश लोगों की पंचायतें स्वयं ही रोजगार सुलभ करा सकेंगी।

यही बात अन्य वर्गों के बारे में है। शिक्षा का स्वरूप बदलने पर तथा रोजगार सम्बन्धी दृष्टि और धारणा बदलने पर परम्परागत हुनर और कौशल की प्रतिष्ठा बढ़ेगी और अधिकांश लोगों को पंचायतें स्वयं ही रोजगार सुलभ करा सकेंगी। परंतु लूट की वर्तमान संस्कृति के रहते तो पंच–सरपंच भी छोटे–मोटे लुटेरे ही बनना चाहेंगे।

विकास की जो छह कसौटियां हैं – उनमें से तीन–रोटी, कपड़ा और मकान की सबके लिए व्यवस्था सामुदायिक जीवन–दृष्टि होने पर सहज ही हो जाएगी। अन्न–दान, भंडारा, लंगर, भोज, अन्न आदि की व्यवस्था को महत्व और प्रतिष्ठा दे दी जाए तो हर क्षेत्र के सम्पन्न लोग अपने–अपने इलाके में एक भी व्यक्ति को भूखा नहीं रहने देंगे, यह संकल्प लेकर

उसे सरलता से पूरा कर सकते हैं। दान, दया, करुणा, धर्म–भावना को पुनः प्रतिष्ठा देने पर कपड़े और आवास की भी सामान्य सुविधाएं सबको सुलभ हो सकती हैं। उसके लिए सहकार, सहयोग और संवेदनशीलता की ही समाज में इज्जत बढ़ानी होगी। अभी तो व्यक्तिगत प्रतिस्पर्धा और मारक सफलता की इज्जत ही हमने शिक्षा और संचार–माध्यमों द्वारा बढ़ा रखी है।

स्वच्छता और स्वस्थ भी सामुदायिक परिवेश द्वारा सरलता से साध्य हैं। सही आहार–विहार और परंपरागत चिकित्सा–रूपों का नवोन्मेष स्वास्थ्य की समस्या को हल कर सकता है। पर इसके लिए स्वयं सबल–सम्पन्न लोगों की जीवनशैली संयम और विवेक पर आधारित होनी चाहिए। अभी तो अधिकतम उपभोग की ललक को ही प्रचारित किया जाता है और धन का अपव्यय ही आज इज्जत की चीज है। बड़ों का अनुसरण समाज करता है। संचार–प्रचार माध्यम की आज अमर्यादित उपभोग की ही लिप्सा फैलाते हैं। बड़े लोग जब चाहेंगे, संचार–माध्यमों की विषयवस्तु तत्काल बदल जाएगी।

शिक्षा का जिम्मा समाज के हाथ में हो

शिक्षा की वर्तमान समझ देश में शिक्षा को एक तो व्यापक नहीं होने देगी, दूसरे उस वर्तमान शिक्षा में अशिक्षा भी छिपी हुई है। भारत की अपनी ज्ञान–परम्पराएं नष्ट हो रही हैं। सरकारों द्वारा शिक्षा का संचालन हर तरह से महंगा, गैर जिम्मेदार और असामाजिक बनाने वाला है। शिक्षा का जिम्मा स्वयं समाज को लेना चाहिए। उसके लिए वैसा परिवेश रचना सरकार की जिम्मेदारी है। सही परिवेश बनाने पर समाज के लोग शिक्षा का सारा दायित्व सम्हाल लेंगे तो सबको शिक्षा का लक्ष्य पूरा होना कठिन नहीं रहेगा।

नया सांस्कृतिक–राजनैतिक परिवेश रचना जरूरी

इस प्रकार बेरोजगारी की समस्या को गांधी–दृष्टि का सहारा लेकर ही सुलझाया जा सकता है। उसके लिए बेरोजगारी को अलग–अलग देखना छोड़ना होगा। यह व्यक्तियों की समस्या नहीं है और केवल मंत्रियों तथा अफसरों की यह जिम्मेदारी भी नहीं है। शिक्षा, जीवनशैली, परस्पर सम्बन्ध और जीवन के आदर्शों की समय से रोजगार का सीधा सम्बन्ध है। सुख–दुःख की वर्त्तमान परपीड़क, बर्बर, क्षुद्र स्वार्थमूलक कठोर दृष्टि को त्यागने पर ही समाज के हर सदस्य की चिंता और जिम्मेदारी का भाव समाज के सबल–सम्पन्न लोगों में आएगा तथा इसी भाव की समाज में इज्जत भी होगी। धन द्वारा लोग प्रतिष्ठा, मान और बड़प्पन ही चाहते हैं। यदि दूसरों के रोजगार की और सुख–दुख की चिंता तथा जिम्मेदारी ही समाज में, शिक्षा–तंत्र में, संचार–प्रचार माध्यमों में श्रेष्ठता और बड़प्पन का निर्विवाद लक्षण माना जाने लगेगा तो समाज के लोग मिलकर बेरोजगारी का मसला आसानी से सुलझा लेंगे। भारत की अपनी श्रेष्ठ परम्पराएं इसमें सहायक सिद्ध होंगी। आवश्यकता एक नया सांस्कृतिक–राजनैतिक पिरिवेश रचने की तथा शिक्षा की एक भिन्न दिशा अपनाने की है। ❑

(पृष्ठ 31 का शेष) **ग्रामीण बेरोजगारी समस्या और समाधान**

की तो कुछ ने हिकारत और कुछ अन्य ने विद्रूपवश ऐसे कर्मियों को पानी पांडे कहना शुरू कर दिया। अब समाज इतना समरस हो चुका है कि कोई पूछताछ नहीं करता। मरे मवेशी की हड्डियां संकलित करने वालों के काम में बदलाव लाया जा सकता है। मल ढोने की प्रथा पूरी तरह समाप्त कर मल निकास योजनाओं के साथ ही गोबर गैस की तरह सैप्टिक टैंक प्लांट बनाए जा सकते हैं। *स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोजगार योजना* को सफल बनाने के लिए ऐसे रोजगार को प्राथमिकता देनी चाहिए जिससे अस्पताल, शिक्षा, सड़क, परिवहन की कमी पूरी हो तथा आमदनी बढ़े। धीरे–धीरे पर्यावरण की समस्या हल करने तथा गांव को स्वावलम्बी इकाई बनाने में मदद मिल सकती हैं। गरीबी रेखा के नीचे वे लोग हैं जिनकी मासिक आमदनी दो हजार रुपये से कम हैं। इसलिए स्वरोजगार योजना का लक्ष्य रोजाना कम से कम 67 रुपये कमाई कराना है। पांच वर्ष के अंतर्गत देश के हर प्रखंड की कम से कम 30 प्रतिशत ऐसी जनसंख्या को गरीबी रेखा के ऊपर लाने का लक्ष्य तय किया गया है जो गरीबी रेखा के नीचे है। यदि ईमानदारी से शुरुआत हुई तो सिर्फ जीवन–स्तर ही नहीं सुधरेगा; हर व्यक्ति के मन में विश्वास बैठेगा कि वह देश का स्वाभिमानी नागरिक बन सकता है। इस काम को महज सरकारी नौकरशाही के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता। ऐसा नहीं है कि देश में निष्ठावान अथवा ईमानदार अधिकारियों का अभाव है। देश के आदिवासी बहुल सबसे पिछड़े जिलों में से एक है–बस्तर। वहां सरकारी योजना के अंतर्गत आदिवासियों को साइकलें दी गईं।सम्भाग के आयुक्त ललित कुमार जोशी के हाथों वितरण हुआ। वे साइकिल देने के साथ ही पात्र का नाम पूछते। एक दो से कहा – चलाकर दिखाओ। इस छोटी सी बारीकी से सही पात्रों तक साइकलें पहुंच गईं और नौकरशाही में छिपा कोई काला चोर फायदा नहीं उठा पाया। स्वरोजगार योजना की तालमेल समितियों में सरकारी कर्मियों के वर्चस्व से मुझे खतरे का अंदेशा होता है। समन्वय समितियों में ग्राम पंचायत तथा जिला पंचायत का प्रतिनिधि शामिल किया जा सकता है। सरकार ने एक अच्छा काम किया है कि जवाहर रोजगार योजना, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, ग्रामीण कारीगरों को उन्नत किस्म के औजार की आपूर्ति आदि का समन्वय बिठा दिया गया है। एक शिकायत जरूर है। इन योजनाओं को अंगेजी संक्षिप्तीकरण से प्रचारित किया जाता है। महबूबनगर जिले में योजना की सदस्या महिलाएं नहीं जानती थीं कि डवाकरा नाम की बला का मतलब क्या है। सिटरा के मायने कितने कारीगर जानते हैं? कम से कम स्वर्ण जयंती स्वरोजगार योजना को एस. जी. एस. वाई. न बनाया जाए। लोग जानें कि योजना आखिर है क्या? जीवन–स्तर के साथ उनका मानसिक स्तर उठना चाहिए। ❑

(पृष्ठ 14 का शेष) ## ग्रामीण बेरोजगारी एक गंभीर चुनौती

जनसंख्या वृद्धि है। अतः जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी नियंत्रण की सर्वाधिक आवश्यकता है। अतः अब आवश्यकता है कि रोजगार तथा गरीबी निवारण के कार्यक्रमों के साथ–साथ परिवार कल्याण कार्यक्रमों को भी प्रभावी ढंग से लागू किया जाए। यदि इन दोनों प्रकार के कार्यक्रमों में कुछ तालमेल बैठाया जा सके और सम्मिलित रूप से दोनों कार्यक्रमों को संचालित करने के लिए सुविचारित रणनीति तैयार और लागू की जा सके तो निश्चित ही अपेक्षित परिणाम प्राप्त होने की आशाएं बलवती होंगी।

- देश के ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सृजन तथा बेरोजगारी निवारण की योजनाएं विशेष रूप से ग्रामीण गरीबों के लिए संचालित की जाती रही हैं। समय–समय पर इनकी प्रभावशीलता की जांच और मूल्यांकन करके इनकी कमियों और संचालन में व्यावहारिक कठिनाइयों का पता लगाकर इन्हें संशोधित, पुनर्संशोधित, पुनर्गठित करके अधिक व्यावहारिक और परिणामोन्मुखी बनाने के तथाकथित प्रयास भी किए जाते रहे हैं लेकिन इनकी प्रभावोत्पादकता सदैव संदेहों के घेरों में ही रही है। अतः अब आवश्यक प्रतीत होता है कि ग्रामीण अंचलों में चलाई जा रही रोजगारोन्मुखी सभी योजनाओं को, वहां फैली हुई गरीबी का, वास्तविक गरीबों का और वहां विकास हेतु क्रियान्वित की जा रही अन्य सभी विकास योजनाओं का पुनर्मूल्यांकन किया जाए तथा इसके परिणामों के परिप्रेक्ष्य में विकास की रणनीति, योजनाओं तथा कार्यक्रमों विषयक नीतियों और प्राथमिकताओं का नए सिरे से निर्धारण और संसाधनों का आवंटन इस प्रकार से किया जाए जिससे सही धनराशि, सही समय पर, सही तरीके से और सही व्यक्तियों तक पहुंचाई जा सके तभी वास्तव में सम्भव हो पाएगा गांवों में बेरोजगारी से लड़ना और उस पर विजय पाना। ❑

(पृष्ठ 6 का शेष) ## गांवों में बेरोजगारी की समस्या

हेक्टेयर है, जिसका कोई उपयोग नहीं हो रहा है जबकि वहां खेती की जा सकती है। पेड़ लगाना तो और भी आसान होगा। देश में 100 लाख हेक्टेयर भूमि इस कारण लगातार परती पड़ी है कि उसके भूस्वामी इतने बड़े हैं कि उन्हें पूरी भूमि पर खेती करने की आवश्यकता नहीं है। इस पर वृक्ष लगाने की भी वे आवश्यकता नहीं समझते। जब किसी देश में भूमि की घनघोर असमानता होती है तो भूमि का इसी प्रकार दुरुपयोग होता है। यदि यह भूमि गरीब आदमी के पास होती तो वह उस पर खेती करता, वृक्ष तो लगा ही सकता था।

अपने देश में राष्ट्रीय प्रतिदर्श सर्वेक्षण के अनुसार 1992 में ग्रामीण अंचल में चोटी के एक प्रतिशत लोगों के पास उतनी ही भूमि थी जितनी नीचे के दो तिहाई लोगों के पास थी। चोटी के 0.6 प्रतिशत लोगों की भूमि नीचे के 55 प्रतिशत लोगों की भूमि से अधिक थी। *(देखिए सर्वेक्षण, भारत सरकार 65वां अंक अक्तूबर/दिसम्बर 1955)*

कृषि गणना के अनुसार उपयोग में न लाई जाने वाली भूमि का बड़ा भाग बड़े भूस्वामियों के पास है। यह इस बात को इंगित करता है कि भूस्वामित्व में घोर विषमता के कारण वृक्षारोपण का कार्यक्रम सफल नहीं हो सकता क्योंकि जिस भूमि पर वृक्ष लगाए जा सकते हैं उनके स्वामी उसमें कोई दिलचस्पी नहीं रखते। असंख्य लोग जो इस कार्य में लग सकते हैं, जीविका विहीन रह जाते हैं। कुल 250 लाख हेक्टेयर भूमि पर वृक्षारोपण में करोड़ों लोगों को वृक्ष लगवाने तथा उनके संरक्षण पर काम मिलता लेकिन यह भूमि निजी स्वामित्व में है। यदि इस भूमि का अधिग्रहण कर सरकारी विभाग द्वारा वृक्ष लगाए जाए तो भी यह योजना सफल नहीं हो सकती क्योंकि समस्या अनुरक्षण और देखभाल की है। जब तक पूरे ग्रामवासियों को इस कार्य की जिम्मेदारी पंचायतों के माध्यम से नहीं दी जाएगी वृक्ष लगाने और उनके संरक्षण का साधारण काम भी संम्पन्न नहीं किया जा सकता।

विकास कार्यों की जिम्मेदारी गांवों पर

ग्रामांचल में रोजगार के अवसर प्रदान करने का यही अर्न्तविरोध है। एक ओर तो असंख्य लोग है जो काम के अभाव में बेकार है दूसरी ओर ऐसे तमाम उपयोगी कार्य जैसे जल और मृदा संरक्षण, वृक्षारोपण आदि जिसमें उन्हें काम मिलता, सम्पन्न नहीं हो रहे हैं। यही बात सड़क, सम्पर्क मार्ग, गोदाम आदि के निर्माण में भी लागू है। इस अन्तरविरोध को दूर करने की पहली शर्त यह है कि ऐसे कार्यों के सम्पादन की जिम्मेदारी पूरे गांव को दी जाए; केवल ग्राम प्रधान को ही सर्वेसर्वा न माना जाए। नौकरशाही को इससे दूर रखा जाए। नवीं पंचवर्षीय योजना के मसविदे में इस ओर संकेत किया गया है। दूसरी ओर इन कार्यों के लिए बजट में व्यापक वित्तीय प्रबन्ध किया जाना चाहिए। इसके लिए अलग से साधन जुटाने की आवश्यकता है क्योंकि किसी भी खर्चे में कमी करना कठिन है।

औद्योगिक विकास के माध्यम से प्रगति का एक पहलू यह भी है कि यदि ग्रामों में निवास करने वाले असंख्य लोग बेरोजगार और निर्धन बने रहेंगे तो औद्योगिक उत्पादन के लिए क्रय शक्ति के अभाव में बाजार नहीं मिलेगा। उद्योगों को लगाने पर इतना बल दिया जा रहा है परन्तु बहुत से उद्योग अपनी क्षमता के आधे या तीन चौथाई पर काम कर रहे हैं। यदि बाजार होता तो ये उद्योग अपनी पूरी क्षमता पर काम करते।

ग्रामों में रोजगार के अवसर यदि तेजी से बढ़ते तो ग्रामीण रूपान्तरण की प्रक्रिया भी तेज होती और शक्ति संतुलन में परिवर्तन होता। बड़े भूस्वामियों की नई पीढ़ी नगरों में जा रही है। उन्हें खेती में कोई रुचि नहीं है। परन्तु लोग जमीन नहीं छुड़ाना चाहते क्योंकि असंख्य गरीब लोग बटाई पर अथवा मजदूरी पर खेती करने के लिए उपलब्ध हैं। यदि ऐसे लोगों को दूसरा काम मिलने लगे तो बड़े भूस्वामी अपनी भूमि को बेचने के लिए विवश होंगें जिससे ग्रामीण जीवन पर उनका वर्चस्व कम होगा और जनतान्त्रिक रूपान्तर की प्रक्रिया तेज हो सकेगी। ❑

सन् 2000–2001 के बजट में ग्रामीण विकास

उल्लेखनीय बातें

- गांवों में 25 लाख नए मकानों का निर्माण करने का प्रस्ताव। गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों के लिए 12 लाख मकान बनाने का लक्ष्य।
- प्रधानमंत्री ग्रामोदय योजना के लिए 5,000 करोड़ रुपये। इसमें से ग्रामीण सड़कों के निर्माण के लिए 2,500 करोड़ रुपये का प्रावधान।
- अगले पांच वर्षों के भीतर सभी गांवों में शुद्ध पेय जल की व्यवस्था करने का प्रस्ताव।
- सभी को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए सर्वशिक्षा अभियान; राष्ट्रीय साक्षरता मिशन का पुनर्गठन करने की योजना।
- भूमि के उपयोग, वनों के संरक्षण और कृषि के विकास के लिए राष्ट्रीय आयोग की स्थापना का प्रस्ताव।
- 75 लाख किसानों को क्रेडिट कार्ड जारी करने का लक्ष्य।
- व्यापारिक बैंकों और सहकारी संस्थाओं के जरिये ग्रामीण विकास के लिए उपलब्ध ऋण राशि में 9,700 करोड़ रुपये की वृद्धि का प्रस्ताव।
- ग्रामीणी जनता की बुनियादी जरूरतों की स्कीमों के लिए 13,000 करोड़ रुपये से अधिक राशि का बजट में प्रावधान।
- गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बसर करने वालों के लिए सार्वजनिक वितरण प्रणाली से मिलने वाले अनाज की मात्रा दुगुनी करने का प्रस्ताव।
- गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों के लिए जनश्री बीमा योजना।
- महिला अधिकारिता कार्यदल के गठन का प्रस्ताव।
- 28 कृषि स्कीमों के एकीकरण का प्रस्ताव।

आर.एन. / 708 / 57
डाक–तार पंजीकरण संख्या :डी (डी एल) 12057 / 2000
आई.एस.एस.एन. 0971–8451
पूर्व भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)–55

R.N./708/57
P&T Regd. No. D (DL) 12057/20
ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi-54

श्रीमती सुरिन्द्र कौर, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली–110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित।
मुद्रक: अरावली प्रिंटर्स एंड पब्लिशर्स प्रा. लि., डब्ल्यू–30 ओखला इंडस्ट्रियल एरिया–II नई दिल्ली–20. सम्पादक : बलदेव सिंह मदान